आत्म संयम

मुनि श्रेष्ठ श्री सुशील कुमार जी की ओजस्वी वाणी का चमत्कार

मुनि सुशील कुमार जी कृत
आत्म संयम

●●

आत्म संयम जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है। आत्मा को संयमित करके ही हम जीवन के अल्पतम लक्ष्य को पा सकते हैं।

मुनि श्री सुशीलकुमार जी ने समय-समय पर आत्म संयम का विवेचन करुणा से ओत प्रोत वाणी से मुखरित किया है, जिसे मार्ग दर्शक के रूप में हर घर की शोभा बनाया जाना चाहिये।

आत्म संयम मुनि श्री के श्री मुख से निकली ओजस्वी वाणी का संकलन है, जिसके प्रत्येक शब्द में आत्म शक्ति और आत्म संयम भरा हुआ है।

इस महत्वपूर्ण संकलन का संयोजन मुनि श्रेष्ठ सुभाग श्री की प्रेरणा से यशस्वी उपन्यासकार जयप्रकाश शर्मा ने किया है।

आत्म संयम

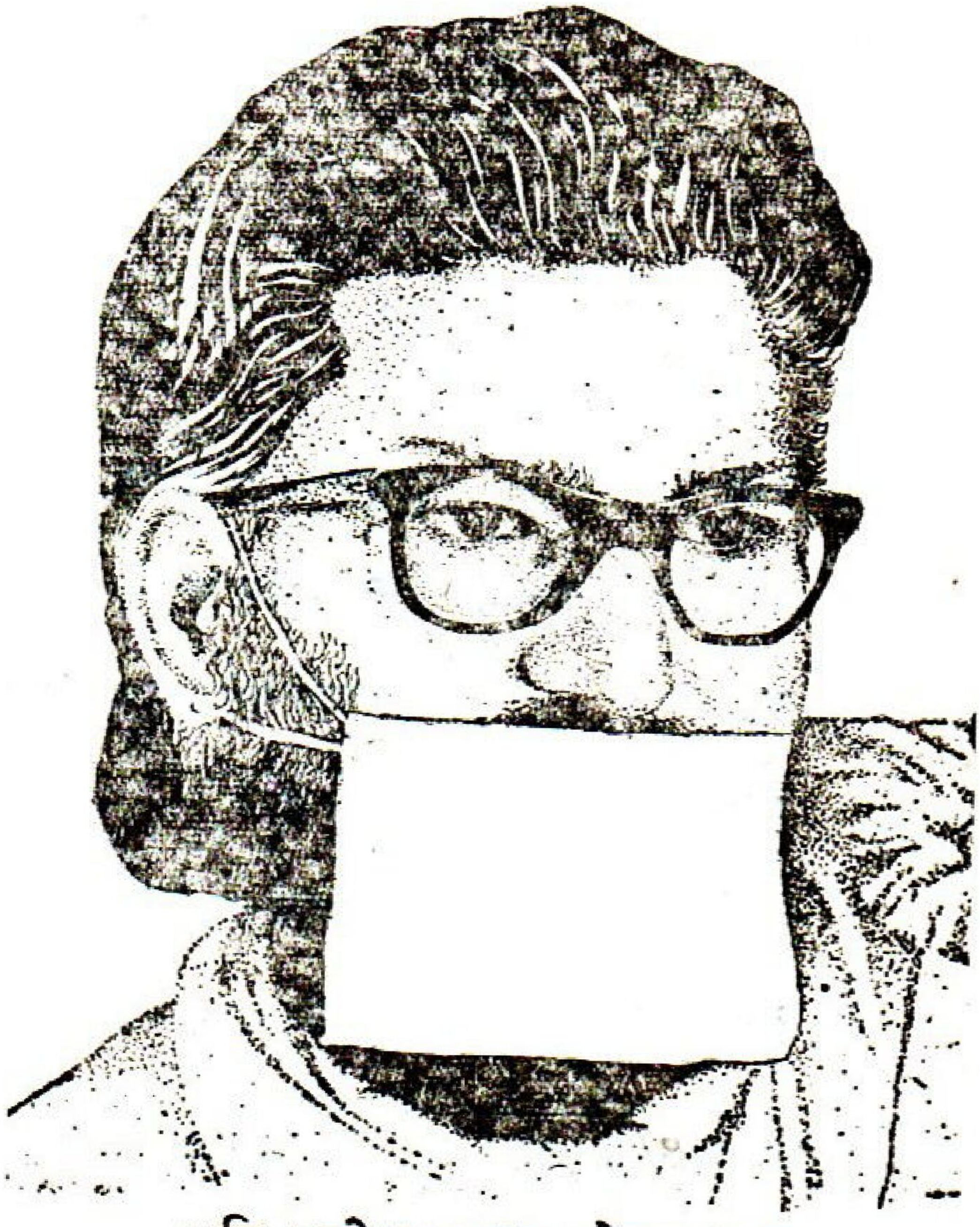

मुनि सुशील कुमार जीमहाराज

मुनि सुशील कुमार जी महाराज
आत्म संयम

प्रेरक	मुनि श्रेष्ठ सुभाग
सम्पादक-संयोजक	जयप्रकाश शर्मा
प्रकाशक	कमला पाकेट बुक्स, मेरठ
मूल्य	तीन रुपये
कम्पोजिंग	अग्रवाल कम्पोजिंग एजेंन्सी
मुद्रणालय	दि अग्रवाल प्रिंटिंग प्रेस

ATMA SAYAM—MUNI SRI SUSHIL
KUMAR

प्रकाशकीय,

इसे मैं एक बहुत बड़ा सयोग और शुभयोग ही मानता हूं कि तीर्थाकर भगवान के परिनिर्वाण समारोह के सम्पन्न होने के साथ देश में अनुशासन वर्ष का शुभारंभ हुआ तथा प्रधानमंत्री श्रीमती इन्द्रिरा गांधी ने कोटि-कोटि भारतीयों के लिये २० सूत्रीय कार्यक्रम का श्रीगणेश किया। ऐसे सुअवसर पर जब मुनि श्री सुशील कुमार जी विश्व को अहिंसा का सदेश देकर पुनः भारत आ रहे हैं तो हम आदरणीय मुनिवर सुभाग जी की कृपा से पांच पुस्तकें आपको भेंट कर रहे हैं। इस पुस्तक माला के संयोजक देश के जाने-माने राष्ट्रीय उपन्यासकार श्री जयप्रकाश शर्मा हैं। इन पुस्तकों के आवरण शिल्पी श्री सुबोध मिश्रा हैं। समस्त मित्रों के सहयोग से पुस्तकें उस पुण्य भूमि को समर्पित हैं, जहां राम, कृष्ण, महावीर, महात्मा गांधी सुशील कुमार और देश गौरव प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के साथ-साथ हम सबने जन्म लिया।

प्रकाशक

नरेश चन्द जैन

कमला पाकेट

५९ शीश महल मेरठ

विषय संकेत

१- धर्म और जीवन
२- आत्मा का लक्षण
३- आत्मा की सिद्धि
४- आत्मा का अस्तित्व
५- आत्मा का विश्वास
६- ज्ञान और क्रिया
७- मौत या वरदान
८- मौत पर मनन
९- इन्द्रिय मन और मनोविज्ञान
१०- अनेकान्त
११- तर्क और श्रद्धा
१२- धर्म के विभिन्न रूप
१३- विश्व धर्म
१४- समय की पुकार
१५- मानवता का मोल
१६- विश्व का भविष्य

१. धर्म और जीवन

विद्यार्थी जीवन छोटे से छोटा जीवन है—जिसमें हम कुछ लेते हैं। बाद में तो देने ही देने का काम है। यदि विद्यार्थी जीवन में ठीक ढंग से लेता है—तो उसके पास देने के लिए एक भण्डार हो जाता है।

आप विद्या पढ़ते हैं। ठीक है। मैं पूछता हूँ—आपके विद्या पढ़ने का उद्देश्य क्या है—आप क्यों पढ़ना चाहते है ? संसार में हमारे जीवन का प्रथम अंश विद्यार्थी जीवन क्यों रक्खा ? प्रश्न उठता है—आखिर क्यों ? क्या आप मेरे प्रश्न का उत्तर देंगे ?

मैं आज धर्म और जीवन के सम्बन्ध में कहने जा रहा हूं। इसीलिये विद्यार्थियों के लिये प्रश्न रख रहा हूँ—लिया क्यों ?

इस लिये कि हम आजादी प्राप्त कर सकें। स्वतन्त्रता समझ सके।

आजाद होना एक बात है—और आजादी को समझना दूसरी बात है।

विद्या का उद्देश्य प्रकाश प्राप्त करना भी हो सकता है।

धर्म और जीवन इन दो शब्द में संसार के सब कार्य-क्रम समावेश हो जाते हैं। कुछ कम धर्म के लिये, सब कुछ जीवन के लिये हैं।

संसार का सारा वर्गीकरण धर्म और जीवन में हो जाता है।

प्रश्न होता है—धर्म पहले या जीवन ? धर्म के लिये जीवन है या जीवन के लिये धर्म ?

धर्म के लिये मर मिटने वालों पर इतिहास भरा पड़ा है—और जीवन के लिये धर्म की धज्जियां उड़ाने वालों की भी कमी नहीं।

धर्म का क्या अर्थ है ? कुछ लोग तिलक छापा, वेष भूषा और ब्राह्म क्रिया काण्डों में ही धर्म मानते हैं। एक दो नहीं—धर्म की २२00 शाखाएं हैं—अर्थात् २२०० प्रकार के धर्म विश्व में प्रचलित हैं और धर्म की भिन्न-२ प्रकार से ७०० व्याख्याएं हो चुकी हैं।

भारत में जैन, बोद्ध और वैदिक येरुसलम फारस आदि मध्य एशिया में पारसी ईसाई और इस्लाम तथा सुदूर पूर्व में सुग लाओ और कन्फ्यूशियस में धाराएं तथा उनके सैंकड़ों शाखा प्रशाखा विद्यमान हैं।

आखिर वे धर्म ही नहीं २२०० है। धर्म के लक्षण एक नहीं ७०० हैं।

इन बातों से किसी भी व्यक्ति का संशय में पड़ जाना स्वाभाविक है आज हमें धर्म के वास्तविक अर्थ को जानना है।

हर व्यक्ति यह समझता है—कि मेरा धर्म सच्चा है। मेरा निर्णय ठीक है।

धर्म ही एक ऐसा तत्व है जिसने आपको इस श्रेणी तक पहुंचाया है। धर्म ने बड़े-बड़े पैगम्बर बना दिये। धर्म ने आदमी को उठाकर भगवान बना दिया। धर्म ही ससार का शासन करने वाला है। धर्म जीवन का सौन्दर्य है धर्म तुम्हारे चेहरे की आभा है। धर्म तुम्हारा आत्म वाद है—धर्म तुम्हारा सर्वाधिक हितैषी है।

मैं नहीं कहता—आप मेरा विश्वास करें। सम्प्रदायों और मान्यता को बैंक में रखो। मस्तिष्क को मत बेचो। उसे निर्णय करने के लिये पुष्ट बनाओ। लोगों ने सम्प्रदाय विशेष कर विचार

धारा के लिये दिमाग को बेच दिया है।

जिन लोगों ने अपनी सम्प्रदाय के लिये दिमाग को बेच दिया है वह जरूर बेकार होगा।

धर्म आधार विचार में नहीं। जो विराट सत्य है—वह है हमारा स्वभाव! स्वभाव का नाम धर्म हैं। नेचर का नाम रिलीजियन है।

लोगों में व्यवहार चाहे कुछ भी हो निश्चय से जो स्वभाव है—वही धर्म है।

प्रश्न होगा यदि स्वभाव ही धर्म है—तो चोर का स्वभाव चोरी करना है—क्या वह धर्म है शराबी का स्वभाव शराब पीना है—क्या वह धर्म है?

नहीं! जैसा स्वभाव होता है—वैसा ही विभाव भी होता है विभाव का अर्थ है विकृत भाव।

धम जीवन के लिये है—यह विभाव है। सम्पत्ति के लिये मनुष्यत यह विभाव है, क्योंकि सम्पत्ति विहीन भी महा मानव होते हैं?

मकान मनुष्य तो नहीं है। पर दत्यों के प्रति आसक्ति यही विभाव है।

प्रश्न उठता है—स्वभाव क्या है? एक युग था—और कुछ लोग आज भी शरीर को ही आत्मा मानते हैं। कहा हैं—मुझे बुखार होगया? क्या आत्मा को बुखार हो गया?

मैं दुबला हो गया? क्या आत्मा दुबलो हो गई? शरीर को ही आत्मा मानना ठीक नहीं। यदि हम शरीर को ही आत्मा माने तो यह स्मृति और अनुभव का भण्डार कौन?

उपनिषद में एक आख्यायिका आती है। एक बार इन्द्र और प्रजापति को शंका हुई कि आत्मा क्या है?

दोनों ब्रह्मा के पास निर्णय के लिये गये और पूछा—भगवान

ग्रात्मा क्या है ?

ब्रह्मा दोनों को एक स्वच्छ सरोवर के पास ले गये और कहा ?

—"जल में देखो–क्या दिखाई दे रहा है।"

दोनों ने कहा "प्रतिबिम्ब।"

ब्रह्मा ने कहा—'यही ग्रात्मा है।"

प्रजापति को संतोष हो गया पर इन्द्र तो बड़ा चतुर था ? उसने सोचा है प्रति बिम्ब ही ग्रात्मा है, तो बिम्ब क्या है और प्रतिबिम्ब का ग्राधार क्या है ?

यह भूख—यह जिज्ञासा ग्राज हजारों वर्ष से चली ग्रा रही है जहां जिज्ञासा होती है—वहां ज्ञान होता है।

तब यह माना गया कि शरीर ग्रात्मा नहीं है।

"ग्रच्छा, इन्द्रियों को ग्रात्मा मान लो ?"

यह भी ठीक नहीं—क्योंकि इन्द्रियों का परस्पर सम्बन्ध कराने वाला कौन ?

कई वर्ष पूर्व नीबू का ग्रापने ग्रस्वाद किया है। ग्रौर ग्राज ग्रापके सामने लाजवाब नीबू ग्राता है। ग्रापकी ग्रांखें निबू को देखती हैं या ग्रापके कान नीबू की चर्चा सुनते हैं—तब बताइये ग्रापके मुंह से पानी क्यों ग्रा गया ? ग्रांख ग्रौर कान का जिह्वा से किसने सम्बन्ध कराया ? ग्रतः मालूम होता है वह कोई ग्रौर है।

तो ग्रात्मा को ही ग्रात्मा क्यों न मान लिया जाय ?

ठीक है। हम पूछते हैं—मन जड़ है या चैतन्य ?

यदि ग्राप कहें कि वह जड़ है–तो मन के विचारों का ग्रनुभव कराने वाला कौन ?

१०–२० हजार का माल यदि-हजार पांच सौ में मिल रहा हो तो चोरी का माल ठहरा। मन कहता है लेलो–पर, ग्रन्दर से जो ग्रावाज ग्राती है वह कहां से ग्राती है।

चोर को चोरी करते समय लताड़ देने वाली शक्ति क्या है। आप सिगरेट पीते हैं। शराब की प्याली पीते हैं-झूठ बोलते हैं, उस समय-एक अन्तर्ध्वनि होती है—यह ध्वनि करने वाला कौन ?

मन के पीछे भी एक ताकत है-और वह है—"आत्मा"

मैंने एक सीधा व्याख्या सीधा सा लक्षण रखा है-आत्मा का स्वभाव-धर्म है।

आप पूछोगे आत्मा का स्वभाव क्या है ?

इसके लिये मैं आपके सामने किसी धर्म पुस्तक को रखूं। यह ठीक नहीं। तुम स्वयं अनुभव करो। अपने जीवन की पुस्तकें आप पढो। तुम्हें स्वयं मालूम हो जायेगा कि धर्म क्या है—और अधर्म क्या है ?

झूंठ बोलना अधर्म है—सत्य बोलना धर्म है। चोरी करना अधर्म है—चोरी न करना धर्म है। आप कह सकते हैं कि यह कोई धर्म-अधर्म नहीं है। हमें शास्त्रों ने बरगला दिया है हमारे दिमाग इस प्रकार गुलाम बना दिये गये हैं—इस लिये हम ऐसे धर्म-अधर्म के भेद बना लिया करते हैं।

अच्छी बात है—यदि आप की बात सही मान ली जाय तो कुत्ते ने तो कोई कुरान या पुराण नहीं पढ़ा। कुत्ते को आप प्रेम पूर्वक रोटी डालते हैं—वह पूंछ हिलाता हुआ—अपना प्रेम प्रदर्शित करता हुआ—रोटी खा लेता है। और यदि वह घर में घुस कर रोटी चुराता है—तब भी क्या वह दुम हिलाता हुआ रोटी खाता होगा ? आप कहेंगे कि वह ऐसी रोटी लेकर भाग जाता है।

मैं पूछता हूं—यह कुत्ते को किसने सिखाया कि यह रोटी प्रेम की है—और यह रोटी चोरी की है ?

यह समझ आत्मा की ही समझ है ? जो उधर बैठा-बैठा धर्म अधर्म का निर्णय करता रहता है।

दूसरा उदाहरण लीजिये—जब आप प्रेम पूर्वक बिल्ली को दूध पिलाते हैं—वह पी जाती है। लेकिन जब वह चोरी से दूध पीने आती है—तब अपने कान क्यों खड़े कर देती है ?

यह धर्म और अधर्म निर्णय देने वाली तुम्हारी आत्मा है स्वभाविक तुम्हारी आत्मा के गुण की व्याख्या करने वाले ग्रन्थ धर्म शास्त्र हैं।

आत्मा के स्वाभाविक गुण धर्म है। उन्हीं गुणो के विकास के लिए जीवन है। कुछ लोग धर्म के लिये ही जीवन का उपयोग करते हैं और विश्व में महापुरुष बन जाते हैं। कुछ लोग जीवन के लिये धर्म का उपयोग करते हैं—जीवन के लिये धर्म को बेच देते हैं—वे ससार में नरभक्षक बन कर मानव जाति को खतरे में डालते हैं। कल्प कल्पांत तक मानव जाति उनके नाम को रोया करती है।

यह विपरीत समझ की गलती आज की नहीं। हजारों वर्ष की है—जिसे इन्सान ने की है।

पुराण की एक कथा मुझे याद आ गई। एक बार मानव ने सोचा कि यह सुन्दर संसार कभी-कभी बड़ा विभत्स हो जाता है। है। दुःख दावानल धधक उठता है। जीवन दूभर हो जाता है। रोग आ घेरते हैं क्यों न भगवान से कोई ऐसी दवा ली जाय कि जिससे ससार सुखमय हो जाय।

चलो भगवान के पास डेप्यूटेशन लेकर और प्रार्थना की कि हे भगवान। तेरे राज्य में हमारे दुःख के निवारण को कोई औषध ही नहीं ? हम बहुत दुखित हैं।

भगवान तो बड़े कृपालु थे उन्होंने झट चार पुड़िया बन्द कर दे दी और कह दिया—वे दो पुड़िया पानी के अन्दर खा लेना और दो पुड़िया बाहर लेप कर लेना अन्दर का पुड़िया से अन्दर के और बाहर की पुड़िया से बाहर के रोग दूर हो जायेंगे। पर सावधान यदि पुड़िया उलट पुलट हो गई तो लेने के देने पर

जायेंगे ?

इन्सान बड़ा खुश हुवा। चला अपने घर की ओर। थकान आ जाने से रास्ते में सो गया। भूलना, उसका सामान्य गुण है—बात भूल गया कि कौन सी पुड़िया खाने की और कौन सी लगाने की उसने खाने की पुड़िया लगाली और लगाने की पुड़िया खा ली। परिणाम भयंकर हुआ।

आप पूछेंगे वे पुड़िया कौन सी थी—? यदि आप भी उन का उपभोग करना चाहे तो लीजिए आप को भी दी जाती है–पर सावधान आप भी कहीं वैसा न कर बैठना। वे चार पुड़िया थी —

धर्म अर्थ काम और मोक्ष

धर्म और मोक्ष अन्दर की तथा अर्थ और काम बाहर की पुडिया थी।

मानव का उद्देश्य धर्म है। अर्थ और काम उसके सहायक हैं। अन्तिम लक्ष्य मोक्ष है। अर्थ और काम धर्म पूर्वक और मोक्ष के लिये होने चाहिये।

धर्म और मोक्ष जो अन्दर की वस्तु थी—उसका साइन बोर्ड आज का मानव बाहर टांग रहा है। मोक्ष को विज्ञापन की चीज बना लिया है। अर्थ और काम को तो जीवन—सात कर लिया है। पी गया है। यही भूल हुई है।

धर्म अर्थ काम और मोक्ष की तरह हमारी संस्कृति के महल के चार स्तम्भ हैं—राम, कृष्ण, बुद्ध और महावीर। हम स्वय एक कृष्ण और बूद्ध और महावीर हैं हम स्ययं उनके चरित्र को अपने जीवन में उतारते हैं तब हम स्वयं उनके साकार रूप हो जाते हैं।

आज आप किसी से भी पूछिये आप कौन हैं—उत्तर मिलेगा—मैं जैन हूँ। मैं मुसलमान हूं। मैं ईसाई हूं। मैं सनातन हूँ। मैं पूछता हूँ— यदि तुम जैन हो गये तो फिर अपने आप को जैन कह कैसे सकते हो। तुम अपना साइन बोर्ड बाहर लटका रहे हो वस्तुतः जैन नहीं हो। यह बात सब के लिये कही जा सकती है।

मुक्ति और धर्म की कल्पना ही आज के जमाने में—इस भौतिक विज्ञान के युग में मखौल की बात रह गई है। दुनिया हम को पागल समझते हैं—

कविवर अकबर ने लिखा है कि—

रकीबों ने रपट लिखवाई है थाने में।
कि अकबर जिक्र करता है खुदा का इस जमाने में॥

मुक्ति का अर्थ स्वच्छन्दता नहीं है।

धर्म आत्मा के स्वाभाविक आचरण का नाम है। जब आप अपने नीजी स्वार्थ से अपने स्वार्थ को कुछ विस्तृत करते हो—अपना स्वार्थ कुटुम्ब तक फैलाते हो तब कुछ आगे बढ़ता है। वही स्वार्थ जब समाज तक फैल जाता है—तुम नेता बन जाते हो। जब मानव जाति तक फैल जाता है—तुम मानवात्मा अर्थात् महात्मा बन जाते हो और उसका विस्तार विश्व के सभी चराचर पहुंच जाता है तो तुम परमात्मा बन जाते हो। यही है—धर्म का उद्देश्य।

इसलिए तुम शरीर मन और आत्मा का विस्तार करो। शरीर विस्तार सबसे मुख्य है। क्योंकि इसी पर हमारे धर्म का पाया टिकता है—

शरीर माधं खलु धर्म साधनम्।

इसलिये शरीर को स्वस्थ, सुडौल और सुन्दर रखने के लिये हमें अहार बिहार का पूरा ध्यान रखना चाहिए। सात्विक अहार बिहार शरीर सर्वोत्तम पोषक तत्व है।

इसके बाद मन के विस्तार का क्रम आता है। मनोविचार ही जीवन को विश्व बन्धुत्व की ओर ले जाता है। मन संकुचित हुआ तो लुटिया ही डूब गई समझलो।

मन का विस्तार ही पत्थर को पिघलाता है। वृक्ष से शिक्षा लेना है। मन को मारो मत। मन को बदल दो।

वह अशोक महान कौन था? वही न जिसने शक और हूणों का खून करके धरती को रक्त रंजित कर दिया। लाखो बहनों का सुहाग लूट लिया। लाखों बच्चे अनाथ हो गये।

वही बाद में लाखों का सहारा बन गया। उसकी भुजाएं उसकी तलवार अनाथों की रक्षक बन गई। क्या बदल गया अशोक में। तलवार वही थी। भुजाएं वही थीं। अशोक वही था। बदला—केवल मन बदला। मन बदला—सारी दुनिया बदल गई।

आप अपने मन को बदलो—मन को विशाल बनाओ। तुम्हारी आत्मा स्वयं विस्तृत हो जायेगा। तुम स्वयं विश्वात्मा बन जाओगे।

मन के हारे हार है,
मन के जीते जीत।
मन के जीते पाईये,
पार-ब्रह्म- परनीत।

मन छोटा होता है तो तृष्णा बड़ी हो जाती है। और जब मन विस्तृत हो जाता है तो तृष्णा का ठिकाना नहीं रहता।

रूस के एक राजा के मन में किसी गरीब की मदद करने की इच्छा हुई। राजा ने उसे कहा—बोल तू क्या चाहता है? मांगले जो तुझे चाहिये। वह भीख मांग कर गुजर करने वाला व्यक्ति था।

उसने सोचा और कहा—महाराज एक झोपड़ी बनाने जितनी

जमीन दे दीजिये। झोंपड़ी बनाकर आराम से रह लूंगा। दरिद्र की इच्छा भी दरिद्र होती है।

राजा ने कहा—अबे इससे क्या होगा और मांग ?

वह गरीब बोला—यदि आपकी इच्छा है तो थोड़ी और जमीन दे दीजिये जिसमें बगीचा लगा लूंगा।

राजा ने कहा—और खायेगा क्या कुछ और मांग ?

तो खेती की जमीन भी दे देना।

राजा ने कहा—देख प्रातः सूर्य की पहली किरण के साथ उस पहाड़ी पर आ जा। तू वहां से चल और जितनी जमीन में शाम को सूर्यास्त के समय तक फिर कर आ जायेगा उतनी जमीन तुझे दे दी जायेगी। और यदि सूर्य अस्त होने के बाद टीले पर पहुँचा तो तुझे जमीन बिलकुल नहीं मिलेगी।

सूर्योदय के साथ ही वह चलना आरम्भ करता है—दौड़ लगाता है। वह सोचता है—भगवान ने पृथ्वी इतनी बड़ी और पैर इतने छोटे क्यों बनाये। वह चाहता है पैर इतने मजबूत और तीव्र गामी होते कि वह सारी पृथ्वी का चक्कर लगा कर आ जाता।

वह खाना पीना सब भूल गया। बारह बज गये। उसने सोचा—अपन बहुत दूर आ गये हैं। यदि वापस सूर्यास्त तक नहीं पहुंच पाया तो सारा श्रम व्यर्थ होगा। वह वापस होता है। गिरता पड़ता पहाड़ी पर पहुंचता है। सूर्यास्त होने में एक मिनिट की देरी है। पैर लड़खड़ा गये हैं। एक ठोकर लगती है—वह लुढ़क कर जमीन पर आ जाता है—और उसके प्राण पखेरू उड़ जाते हैं।

पहाड़ी पर खड़े हुए सामत और राजा देख रहे हैं। सामन्तों ने पूछा—राजन वह तो मर गया। राजा ने उसे गड़वा दिया। उसे ६ फिट जमीन दे दी गई। जितनी जमीन वह नाप सकता

जितनी जमीन वह नाप सकता था उतनी उसको दिए गए। मतलब यह कि एक बुरी चीज है।

बस कहानी खत्म है। आप दुनिया में ऐसा काम कर जाओ जिससे तुम्हें दुनिया याद करे—दुनिया तुम्हारे पद चिह्नों पर चल कर अपनी मंजिल तय करे।

कबीर दास के शब्दों—

जब तू आया जगत में,
जग हंसता तू रोय।
करणी ऐसी कर चलो,
तू हसता जग रोय॥

तुम्हीं लोग नेहरू गांधी, मोहम्मद और महावीर बन सकते हो? तुम्हें काम करना है।

कुछ काम करो, कुछ नाम करो।
जग में रह कर कुछ नाम करो॥

वरना अकबर तुम्हारी गिनती उन मुर्दों में करेगा जो कब्रिस्तान में गड़े पड़े हैं।

श्रमिक श्रम करता है। हम भी श्रमिक हैं। हम भी श्रम करते हैं। श्रमिक में और हम में कुछ अन्तर है—श्रमिक श्रम प्रति फल चाहता है और होता है—इस लिये वह श्रमिक कहलाता है। हम श्रम का फल न चाहते हैं न ऐसे हैं इसलिये हम श्रमण कहलाते हैं।

इस लिये श्रम करो। पुरषार्थ करो। निष्काम कर्म करो।

पुरुष हो पुरुषार्थ करो उठो।
पुरुष क्या पुरुषार्थ हुआ न जो॥
—श्री मैथिली शरण गुप्त

छात्र गणों और बन्धुओं।

आप लोग धर्म के लिये अपना जीवन समझो। भोजन तुम्हारे लिये है—तुम भोजन के लिये नहीं। मकान तुम्हारे लिए है—तुम मकान के लिये नहीं। जमीन जायदाद और धन दौलत तुम्हारे लिए हैं - तुम उनके लिये नहीं।

अपनां विचार बदल दो। तुम्हारा जीवन सफल हो जायगा।

मोह की ओर नहीं प्रेम की ओर आइये। मोह में आवर्त है, वर है। डूब जाता है उसमें मानव। प्रेम में कहर है—मोज। आप प्रेम के पुजारी बनें। अपना जीवन अपनी आत्मा के स्वभाव के अनुरूप बनाये।

यही मानव जीवन पाने का सार है। यही धर्म और जीवन का रहस्य है।

● ●

आत्मा का लक्षण

एक दिन एक भाई ने प्रश्न किया था—भगवान के चरण क्या है ? वे भगवान के चरण समझना चाहते थे।

मैं पूछता हूं—भगवान-भगवान के शरीर को कहा जाता है—या भगवान की आत्मा को ?

वक्ता जो भगवान कह रहा है वह सकेत करता है। यदि शरीर को भगवान कहा जाता है—तो शरीर को आत्मा के पृथक् होने के बाद ही जला दिया जाता है। क्या आप उसे भगवान कहेंगे ? शरीर भगवान का है ? इस वाक्य में शरीर और भगवान दो पृथक् तत्व हैं, शरीर भगवान का है। शरीर भगवान नहीं। यह मेरा फोटो है—पर मैं फोटो नहीं। चित्र या प्रति-छाया भी मेरी आत्मा की नहीं। परन्तु मेरी नेश्राय के इस भौतिक शरीर की अनंत, अनंत पदार्थों में से एक पर्याय की यह छवि है।

शरीर की पर्याय क्षण-क्षण में बदलती रहती हैं बचपन, जवानी और बुढ़ापा—परिवर्तित रूप से आप देख सकते हैं। पर यह मकान, हमारा यह शरीर समय-समय पर बदल रहा है जिस के सूक्ष्म परिवर्तन को हम लक्ष्य नहीं कर सकते।

२-४ या १० मास पूर्व आपने जो मेरे शरीर को देखा था—वह अब नहीं है।

आप भगवान के चरण जानना चाहते हैं —पर भगवान शरीर शरीर नहीं माना कि भगवान के शरीर में कुछ वर्ण गन्ध रस स्पर्श के परमाणु पुण्य प्रकृति के कारण ज्यादा अच्छे होंगे – फिर भी आपके और उनके शरीर में कोई अन्तर नहीं।

तो भगवान शरीर को नहीं उनकी आत्मा को कहा है।

यदि आत्मा को भगवान कहा तो आप भी आत्मा हैं —आप स्वयं अपने आपको भगवान क्यों नहीं कहते। चींटी, मक्खी, मच्छर में भी आत्मा है। इन्हें आप भगवान नही कहते।

—श्री ठाणांग सूत्र में कहा गया है कि—"एगे आया"। आत्मा एक है—और आत्मा भगवान है। यह निश्चय जरूर दृष्टि से कहा गया है। हम व्यवहार में हैं निश्चय एक विश्वास है। व्यवहार एक कार्य है।

बट बीज में १ विशाल वट वृक्ष समाया हुआ है। यह एक विश्वास है। एक विशेष अनुभव के बाद कहा गया है। इसलिए- यह कहा जा सकता है—वट बीज में वट वृक्ष हैं – पर. यदि कोई उसे तोड़ के देखे—तो क्या उस में वट वृक्ष देखा जा सकता है ?

आप भगवान हैं। बिल्कुल ठीक। आप में भगवान बनने की योग्यता है पर, पुरुषार्थ की आवश्यकता है, नियति की आवश्यकता है, काल की आवश्यकता है। आप भगवान बन सकते हैं।

घड़ा मिट्टी से बनता है। इसलिए जमीन को न तो हम घड़ाती कह सकते न इससे घड़े का उपयोग ही ले सकते हैं।

माना कि तुम भगवान हो—पर व्रत धर्म चारित्र धर्म का आराधन किये बिना भगवान नहीं हो सकते।

तुम भगवान हो इस बात का स्वयं तुम्हें विश्वास नहीं।

अविश्वास ही सब से बड़ी कमजोरी मानव की ।

तुम में अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन । अनंत चारित्र व्यक्त करने की क्षमता नहीं आवेगी तब तक तुम भगवान कैसे हो सकते हो ।

तुम बेहोश परमात्मा हो सुप्त ब्रह्म हो । जागो जरा, होश में आओ ।

सोये हुए व्यक्ति में ताकत का अभाव होता है । शेर का बच्चा यदि भेड़ों में रहता है—तो वह भी भेड़ बन जाता है । जब तक उसे अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं होता वह शेर हो नहीं सकता ।

तुम बकरी नहीं शेर हो । परदा उतार दो । तुम परमात्मा हो—भगवान हो । पर, तुम नपुंसकों और कायरों के साथ रह कर कायर हो गये हो ।

तुम पैसे के नष्ट होने पर रोते हो । तुम्हारा पेट हिल उठता है ।

जिस दिन तुम सिंह गर्जन की सुनोगे, वीर वाणी सुनोगे—तुम वीर हो जाओगे । वीर की सन्तान हो तुम । तुम्हें आत्मा विश्वास की आवश्यकता है ।

टपके से भयभीत होने वाले शेर की तरह कायर न बनो । आत्म स्वरूप को पहचानो । भगवान का स्वरूप और तुम्हारे स्वरूप एक है ।

तुम अनंत शक्ति धारक हो । रोग गरीबी, दुःख तुम्हारी आत्मा के रोग नहीं थे शरीर के सगे हैं । तुम्हें उसकी रूप में आना है । नक्काल बन कर न हो । शेर की खाल में रहने वाले गधे से भय खाने वाले लोग अवसर पाकर जान के दुश्मन बन

जाते हैं। वेष से काम चलाने वाला नाजा नहीं—पानी अन्त, तक को सुधारता है ।

एक पंजाबी कवि ने कहा है—

बाणा बदले सौ सौ बार।
बदले बाण तो बेड़ा पार ॥

सौ सौ बार बाणा (वेष) बदलने पर कोई लाभ नहीं। आदत बदले और पर्वत के समान ओघ, पातरा भी मुंह पत्तियों का ढेर लगा देने पर भी सिद्ध नहीं हुई।

शरीर साधन है—साध्य नहीं। निश्चय और व्यवहार की संगति करिये ? आत्म स्वरूप को भगवान कहा जाता है। चारों तीर्थ को भी भगवान कहा गया है। भगवान के चरण दो तरह के हैं। एक ज्ञान दूसरा चारित्र। या ज्ञान और मिलना ज्ञानक्रियां श्याम मोक्षः। हमें ज्ञान पूर्वक क्रिया का आराधन करना है। इसी में आत्म सिद्धी है।

हम उसी आत्मा के लक्षण बनाने जा रहे हैं।

आत्मा के लक्षण के पूर्व लक्षण के लक्षण जान लेना भी जरूरी है। लक्षण दर्शन शास्त्र का एक पारिभाषिक शब्द है। जिसका अर्थ होता है :—

लक्षण—अति व्याप्ति, अव्याप्ति और असम्भव दोषों से रहितब वस्तु की व्याख्या को लक्षण कहते हैं।

व्याप्ति—जो लक्षण बताये जावें वह उस वस्तु में पूर्ण रूप से व्याप्त हों उसे व्याप्ति कहते हैं। जैसे जल में शीतत्व। अग्नि में उष्णत्व।

अव्याप्ति—पानी का एक लक्षण किया जावे—पानी म े ह

होता है, यह उसका व्याप्ति दोष है क्योंकि सफेद पन पानी के अन्दर घटता नहीं। वह तो—पानी तेरा कैसा रंग।

जिसमें मिलाओ वैसा रंग ॥

अति व्याप्ति—यदि कोई कहे कि पानी का लक्षण तरतत्व है। तो यह अति व्याप्ति दोष है क्योंकि तरलत्व दूध, घी, तेल, पारद आदि कई स्थानों पर प्राप्त है।

असम्भव—यम उष्णत्वं तम जलत्वं।

जहां उष्णता है–वहां जल है। यह असम्भव दोष है क्योंकि जल में उष्णत्व की अनुपलब्धि है।

आत्मा का लक्षण हमें जानना है—लक्षण का अर्थ है—

लक्षणो व्यवनिछन्नत्वं वामुतत्वं तल्लक्षणम्।

जो सब वस्तुओं से लक्ष्य को भिन्न करदे यही लक्षण है।

जैसे—गोत्वं कंबलत्वम्।

गाय के गल कंबल होता है। यह गाय का लक्षण संसार के सब प्राणियों से पृथकत्व प्रदान कराया है।

अव्याप्ति—जैसे कोई आत्मा का लक्षण करे—जहां शक्ति है वह आत्मा है। शक्ति जल में भी है और आत्मा में यह गुण पूर्ण व्याप्त नहीं है।

अति व्याप्ति–जो अरूपी है वह आत्मा है। यह अतिव्याप्ति दोष है। क्योंकि अरूपत्व धर्मात्मा, अधर्मात्मा आकाश आदि अनेकों द्रव्यों में भी है। इसलिये यह अति व्याप्ति दोष है।

असम्भव—जहां लक्ष्य में लक्षणा की।

अनुपलब्धि हो–जैसे—

आत्मा अचेतन है। यह आत्मा के लक्षण के विपरीत है।

आत्मा में जड़त्व कदापि समय नहीं। अतः यह असम्भव आत्मा का निर्दोष लक्षण निम्न है :—

उपयोगों लक्षम्

आत्मा उपयोग वाला होता है उपयोग २ प्रकार के हैं। ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग यह लक्षण अति व्याप्ति अव्याप्ति और असम्भव दोषों से रहित है।

अतएव यही आत्मा का विशुद्ध लक्षण है।

कल आत्मा के उपयोग—ज्ञान दर्शन बल वीर्य आदि का वर्णन किया जायेगा।

आशा है—आत्मा के वास्तविक लक्षण का आपको कुछ ज्ञान हुआ हो।

●●

समय की पुकार

आज का विषय है, समय की पुकार। गुजराती में इसीको समय को हांकला और उर्दू में वक्त की आवाज कहेंगे, यह सब शीर्षक परस्पर सम्बन्धित हैं। शीर्षक के अर्थ को आप लोग जानते हैं और यह भी समझते हैं कि वह किस विषय पर केन्द्रित है।

अब आपके मन में प्रश्न उठेगा कि क्या समय भी बोलता है। समय की हांकला आपने सुनी है। समय भी क्या पुकार करता है? इस प्रकार आपके मन में अनेकों प्रश्न हैं। लेकिन आप सब सहमत होंगे कि समय पुकारता है, पुकार करवा देता है। आदि विषय के प्रपंच में न पड़ कर हमें देखना है कि समय की पुकार एक सार्थ शब्द है। हमारा उद्देश्य है कि आज का समय सबसे क्या अपेक्षा रखता है और इसके लिये हमारे विचार क्या हैं और कहां-कहां केन्द्रित हैं?

जैन-परम्परा का पुराना इतिहास इस बात का साक्षी है कि इतिहास समय के अनुरूप विकास करता जाता है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के सूत्र सदैव रहेंगे। जब आप रोम में हैं तो रोम देश की प्रथा के अनुसार काल को देखकर सब चाल चलता है अतएव काल की पुकार सुनो और उसकी अनुकूलता—प्रतिकूलता जान कर आगे बढ़ो। आज केवल [illegible] शब्द लिया

गया है। शास्त्र का काल—'तेण कालेण तेणं समयेण' का सूत्र अब भी हमारे सामने है।

भाइयों! समय की अपनी कहानी होती है और हर काल की कहानी अलग-अलग होती है। यह कहानी दूसरे काल में प्रविष्ठ होकर परिवर्तित हो जाती है। प्रत्येक विभिन्न युगों की कहानियों में साम्य नहीं। हर काल की अपनी-अपनी कहानी है और प्रत्येक काल की कथा नई होती है।

आपने सुना है—धार्मिकों के बिना धर्म का अस्तित्व नहीं। और धर्म कार्ल मार्क्स का कहा—अफीम नहीं है. वह अमृत है। लेकिन जो धार्मिकजन समय—काल को नहीं देखते, वे कदापि अपनी रक्षा नहीं कर सकते। फिर भला, धर्म की रक्षा वे क्या करेंगे। समय-धर्म को पहचानिये। समय-धर्म कह कर पूर्वजों ने समय की महत्ता प्रदर्शित की है। समय का मात्र भौतिक मूल्यांकन ही न कीजिये वरन् उसकी नींव पर भविष्य की रचना भी कीजिये। फिर भी समय बदल जाता है, परिवर्तनशील है, पर परम्परा नहीं बदलती। परम्परा सत्य शाश्वत एवं शुद्ध है। अब जरा हम यह देखें कि हम अपनी परम्पराओं की रक्षा कहां तक कर रहे हैं। दूसरे सम्प्रदाय का प्रश्न नहीं यहां तो अपना ही सवाल है।

धर्म के प्राचीन सिद्धान्त है, जिन्होंने धर्म की रचना की है, ये पवित्र सिद्धान्त प्राचीन हैं। लेकिन जितने पवित्र एवं प्राचीन है उतना उनमें परिवर्तन भी लोगों ने कर दिया है। आप आश्चर्य करेंगे कि यह परिवर्तन किन्हीं दूसरे व्यक्तियों ने नहीं, बाहरी काल के लोगों ने नहीं: स्वयं जैमियों ने ही कर दिया

है । अहिंसा जैन धर्म की आत्मा है। स्वयं भगवान महावीर की अमृत वाणी द्वारा अहिंसा का वातावरण विश्व में विकसित हुआ है। लेकिन ऐसे भी कुछ सज्जन हैं जिन्होंने इस पारस्परिक, पवित्र अहिंसा में भी परिवर्तन कर दिया है।

अब बस परिवर्तन को आपको समझ लेना है और इसलिये तैयार हो जाना है कि ऐसे समय आपका क्या कर्तव्य है यानी आपको समय की पुकार सुनकर उसके अनुसार प्रस्तुत हो जाना है। क्योंकि सिद्धान्त परिवर्तित हो जायेंगे तो उनका कुछ भी मोल नहीं रहेगा। हजारों वर्षों से साधुओं ने जिन सिद्धान्तों का संरक्षण-पोषण, अपनी तपस्या एवं बलिदान द्वारा किया है, आज उनकी रक्षा का प्रबन्ध प्रबल हो उठा है।

सिद्धान्तों में परिवर्तन करके भी परिवर्तनकार हमारे प्रश्नों का उत्तर नहीं देते। यदि उत्तर नहीं दे सकते तो साफ जाहिर है कि उनके सिद्धान्त कमजोर हैं और वे भ्रम में भटक रहे हैं।

यदि एक व्यक्ति एक सिद्धान्त का प्रेमी-प्रचारक हो और दुनियां में यदि सब व्यक्तियों का एक ही सिद्धान्त हो तो कहीं विरोध नहीं रह जायगा। भला अहिंसा के पवित्र सिद्धान्त में किसी के विवाद की आवश्यकता कहां ! साफ बात है कि अहिंसा रक्षण करती है और रक्षण करना सिखाती है। लेकिन इस सिद्धान्त में कुछ लोगों ने अपनी अक्ल लगाई है और उसे बदल कर यह आशय निकाला है कि अहिंसा रक्षण नहीं करती। रक्षण करना तो पाप है। जहां रक्षण में हमें पुण्य बतलाया गया है, वहां दूसरों के कोष में १८ पाप बतलाये गये हैं।

यद्यपि उनके और हमारे सम्प्रदाय भिन्न हैं फिर भी वे भी

जैन और हम भी जैन है । जैन नाम की रजिस्ट्री नहीं करवाई गई किन्तु श्वेताम्बरी जैन है या दिगम्बरी या तेरहपंथी ही जैन हैं । सब जैन कहलाते हैं

लेकिन हमें इन जैन शब्द को समझना और समझाना है। सिद्धान्तों की जहां हत्या हो रही हो वहां हमारा कर्तव्य है उनकी रक्षा करना । दूसरे और अपने सम्प्रदाय का संगठन हम भी चाहते हैं। एक हो जाओ, समय को प्रबल पुकार है लेकिन इसका सबसे पहले अपने सिद्धान्तों की रक्षा के लिये हमें प्रयोग करना है ।

एक होने में अनेक रास्ते हैं। कौन सा रास्ता आप अपनाओगे। क्या अपने सिद्धान्तों का खून कर विरोधियों से मिल जायेंगे। उनसे सहमत होकर उनका संगठन पायेंगे। आप या दूसरों की फिजूल बात को बिना सम्मत तर्क के स्वीकार कर लेंगे ।

दूसरा तरीका है, दूसरा रास्ता है, सामने वाला हमारी बात स्वीकार करे। विवाद द्वारा समझौता । अपनी अपनी कमी दूर करें और सच्चे मार्ग के अनुगामी बनें । लेकिन मेरा कहना है गिरने के बाद समझौता गुलामी है। सिद्धान्तों की हत्या ठीक नहीं।

मैं सहमत हूं कि रक्षा के साथ एकता बढ़ । मगर धर्म की रक्षा समय समय पर न की गई तो बाद में वह न हो सकेगी। वर्षा ऋतु से पहले आप अपने घर, भवन, मकान को देखते हैं, उनकी दुरुस्ती और मरम्मत करवा लेते हैं कि कहीं से पानी तो नहीं टपकता है ।

इसी प्रकार हमें काल और समाज की चाल को देखते हुए

अपना हाल ठीक कर लेना है। इसमें एकता कहीं भंग नहीं होगा। उल्टे इसकी वृद्धि होगी। एकता के लिये भवन का भंग ठीक नहीं। अपनी तैयारी घातक नहीं है। एकता के लिये किये जाने वाला प्रयास विपक्षी को दबाये नहीं। दबा कर अनजान में ली गई स्वीकृति—स्वीकृति नहीं है। एकता समा-मता से आती है। दबाव का परिणाम फूट और गुलामी में प्रकट होता है।

स्थानक वासियों के अपने सिद्धान्त हैं। उनसे आप सब सहमत हैं। दूसरा एक और सम्प्रदाय है जो हमारी परम्परा से से मेल नहीं खाता, वह विरुद्ध दिशागामी है। पृथक् पथगामी है।

अपने यहां के सप्ताहिक को आप पढ़ते होंगे उसमें इसी सप्ताह आपने पढ़ा होगा। एक लेख छपा है। जिसके चित्र वाले जैन साधु के लिये लिखा गया कि इन्होंने २७ वर्षों से स्नान किया। कपड़े नहीं धोये। ये साधु बहार से भोजन लाकर खाते हैं। इन बातों को लाखों व्यक्तियों ने पढ़ी होगी। अब यदि कोई व्यक्ति स्थानकवासियों को कपड़े धोते देखेगा तो क्या कहेगा ! या तो हम लोग इस प्रचार का उत्तर दें अथवा उसे ज्यों का त्यों मान लें।

अखबारी प्रोपेगण्डा साधुओं का काम नही ! उन्हें सेवा करना है निस्पृह, निष्काम। यदि वे शहरों में सेवा के सदाउद्देश्य को लेकर नहीं रह सकते तो वे वनों में चले जायं। एक और जो परम्परा है—उन्हीं पर, उन्हीं कपड़े धोते साधुओं पर निर्भर है शेष क्या असाधु हैं।

अन्य जैन सम्प्रदायों में भी साधु हैं। मैं उनके विषय में

कहना चाहता हूँ पर इतना ही कहूँगा कि धर्म मर्यादाओं के बाहर सिद्धान्तों के विरुद्ध जा रहे हैं। जैनधर्म के प्रचारार्थ चाहे इसमें हमें कोई उज्र नहीं। लेकिन सिद्धान्तों की हत्या न हों।

इसलिये जैसा कि पहले मैंने बतलाया, बरसात के पहले छत को मरम्मत करना है। समय आ रहा है कि एक होकर उठे और भावी तूफान आंधी और बरसात से धर्म भवन की रक्षा करें।

वे जैन कहलाने वाले साधु दान के विरुद्ध हैं और कहते हैं। यदि दान दिया भी जाये तो साधुओं को ही दें। भला महानुभावों आप ही बतलाइये, साधुजन दान लेकर क्या करेंगे? चारों धर्मों में दान श्रेष्ठ एवं उत्तम माना गया है, लेकिन वास्तविक दान क्या है। इसे भूल कर, भ्रम में डाल कर दान धर्म के अर्थ बदल कर जनता को गुमराह कर रहे हैं।

इसी प्रकार शील के अर्थ और व्याख्या भ्रमपूर्ण बना कर असहाय स्त्री की रक्षा में सोच विचार करने लगे हैं। ऐसा कौन ज्ञानी पुरुष है जो सती पर होता बलात्कार देख कर भी चुप बैठा रह जायगा। यथाशक्ति व्यक्ति अबला की रक्षा करेगा। उस सम्प्रदाय विशेष के उद्देश्य ये सिद्धान्त है सती पर होता लात्कार रोकना नहीं, उसमें अन्तराय न डालना। भला ऐसे लोग जो भावना और तप की बात करते हैं कितने गलत है। जयपुर की एक घटना है। एक मकान में सम्दाय विशेष के कथित जैन साधु बैठे थे। एक नौकर वहां दिया लगाने जल मरा

ऐसे ही थे । यदि उसे बचाते, आग से निकलने का रास्ता बताते तो हमारा सयम नहीं रहता और यदि बच जाता तो आजीवन जो पाप करता वे सारे पाप हमें लगते ।

भला अब ऐसे ऐसे लोग धर्म की नीव की मूल भूत सिद्धान्तों को बदल रहे हैं । धर्म का सत्य स्वरूप कैसे स्थापित रह सकता है ?

हमने अपने और आप जैसे श्रद्धालु श्रावकों के प्रयत्न से कत्लखाना बंद करवाया है, अन्य स्थानों में भी प्रयास चल रहे हैं. लेकिन वे लोग जीवदया में भी पाप मानते हैं । उनके अनुसार तो हमने पाप के गट्ठर बांध लिये हैं । आज रक्षा करना क्या पाप बन जायेगा ?

इन्हीं झमेलों में धर्म सिद्धान्त पड़ गये हैं । ये प्रपंच १७० वर्षों में पैदा हुए हैं । साधुजी के एक शिष्य थे । महाराजा बाहर जा रहे थे तभी मकान में कुतिया ने बच्चे दिये । महाराजा ने शिष्य से कहा—में जा रहा हूँ । कुत्तों की रक्षा करना । इसी बीच कुत्ता आकर बच्चों को मार गया, शिष्य देखता रहा और उसने उन्हें बचाया नहीं । यह सोचकर वह चुप रहा कि भावी पाप मुझे लगेगा ।

ऐसे साधुओं ने ही सिद्धान्तों की हत्या की है । भगवान ने अनुकम्पा को बड़ा महत्त्व दिया हैं ।

अनुकम्पा से भाव शुद्धि होती है । लेकिन जैसे धर्म के विभीषणों द्वारा जैन धर्म के दो रूप बनें । भगवान ने स्वयं गोशलक की रक्षा की थी । किन्तु ये लोग कहते हैं, । भगवान् चूक गये । हम इन लोगों के सिद्धान्त परिवर्तन की नीति को बर्दाश्त नहीं कर सकते, न करेंगे । सिद्धान्त की रक्षा प्रथम

कार्य है। कोई माली ऐसा नहीं है जो बाग को नष्ट होने दे। माली खुश होता है कि फूलों की खशबू ले। पौधे न उजड़े, फूलों का रक्षा हो। इसी प्रकार हम सब संघ की रक्षा चाहते हैं। संघ का निर्माण धर्म की रक्षा हित है।

इसलिये संघ बनाकर धर्म की रक्षा करें विरोधी गोशालक को जब कुण्डकोलिया श्रावक ने हरा दिया तो भगवान ने प्रसन्न होकर कहा—धन्येसि कुंडकोलियाण तुमं !

धर्म की रक्षा श्रेष्ठ कार्य है। धम टिका रहेगा तो सब ठीक होगा। धर्म न रहेगा तो कुछ न रहेगा। धर्म के संरक्षण के लिये कटिवद्ध हो जायं।

"यतो धर्मस्ततो जयः।"

आयुर्वेद का महत्त्व

आयुर्वेद का उद्देश्य औषधि ही देना नहीं है, अपितु स्वस्थता को स्थायी रखने के लिये दैवी गुणों का विकास भी करना है। जन-कल्यान तथा विश्व-हितअर संस्थाओं आयुर्वेद दर्शन का भी मुख्य स्थान रहा है। यद्यपि भारतीय चिन्तनधारा का ध्रुव केन्द्र विमुक्ति और आत्म-सिद्धि रहा है तो भी आयुर्वेद दर्शन का मुख्य उद्देश्य आत्मसिद्धि तथा मनुष्य के स्वास्थ्य को स्वस्थ रखना ही रहा है।

यद्यपि बीमारियां पेट की, मन की तथा आत्मा की ही होती हैं। आयुर्वेद विविध रोगग्रस्त मानव को जीवन दर्मन देता है, आरोग्य का आश्वासन देता है। औषध देना ही आयुर्वेद का आचार-शास्त्र है, जिसके साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं, क्योंकि यह कार्य वैद्यों और डाक्टरों का है, मेरा नहीं। मेरा तो धार्मिक दृष्टिकोण से आयुर्वेद के दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना है।

विश्व के आरोग्य पथ-प्रदर्शक चिकित्सकों की तुलना में भारत के आयुर्वेददक्ष किसी प्रकार से पीछे नहीं, अपितु प्रगतिगामी है। आज चाहे भारत में और विदेशों में आयुर्वेद का कितना भी कम महत्व आंका जाता है, किन्तु यह निश्चय है कि चिन्तन की दृष्टि से आयुर्वेद संसार की सफलतम तथा श्रेष्ठतम आरोग्यप्रद पद्धति है, क्योंकि आयुर्वेद ने मानव को औषधियों का दास नहीं, अपितु दैवी गुण—अहिंसा, सत्य,

श्रद्धा, ब्रह्मचर्य, सन्तोष और आत्म-विश्वास की ओर प्रेरित किया है।

यह आत्मा का मन्दिर शरीर संसार भर का कूड़ा-कचरा भरने के लिये नहीं, अपितु सत्व, संशुद्धि तथा आत्मसिद्धि के लिये है। दवाइयो की गुलामी बढ़ती जा रही है, वासना की लालसा उत्तेजित हो रही है। कामुकता, वीर्य-क्षीणता, बल व पुरुषार्थहीनता दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। रोग और रोग-प्रसार की दवा इन्जेक्शन नहीं है, अपितु संयम है। संयम का समर्थन आयुर्वेद करता है, इसलिये हम आयुर्वेद को धर्म के अधिक निकट मानते हैं। मुझे आयुर्वेद के अध्ययन से यह विश्वास हो गया है कि आयुर्वेद संसार में शुद्ध, सत्व, दोष-रहित और कल्याणांश को शाश्वत बनना चाहता है। इसलिये उसने उसी पुरुष को ब्रह्म कार्य कहा है जो पवित्र, सत्यपरायण, जितेन्द्रिय, न्यायप्रिय ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न, वक्ता, चिन्तक सम्यक्दृष्टि सद्विद्यापक और कषायरहित होता है।

क्योंकि आयुर्वेद का विश्वास है कि :—मनुष्य के रोगों का प्रतिकार आन्तरिक शुद्धि से सम्भव है। हम आयुर्वेद के इस मुख्य अंश का आध्यात्मिक समर्थन करते हैं जिसमें :—आत्मा की सत्ता, मन का विवेचन, अन्तःकरण शुद्धि और संयम की आज्ञा का उल्लेख किया गया है। आज भारतियों की मानसिक स्थिति बड़ी विचित्र है. लोग कहते हैं कि वैद्य सावधानी से चिकित्सा नहीं करते—किन्तु मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि तुम्हारे देश के पास ही जापान भी एक राष्ट्र है। जरा उसकी ओर भी ध्यान दीजिये. वहां वैद्यों के साथ सम्बन्ध भिन्न प्रकार का है। जापान में वैद्यों को स्वास्थ्य रहेगा तब तक पैसा मिलता रहेगा और जब किसी भी सदस्य को रोग ने दबोचा कि

कि वैद्य का आमदनी कट गई। क्योंकि वैद्य स्वास्थ्य रखने के लिये होता है न कि रोग के लिये।

हिन्दुस्तान की विचित्र दशा है, बीमारी आयेगी तो वैद्य को पूछा जायगा, नहीं तो वैद्य साहिब भूखा मरा करें।

अब आप समझ लें कि आप वैद्यों की भावनाओं को किस प्रकार बनाया चाहते हो। खैर यह आपका काम है। मेरे कहने का आशय तो इतना ही है कि आयुर्वेद का मुख्य ध्येय आरोग्य को स्थायी बनाये रखना है। मैं मानता हूँ कि आयुर्वेद एक जीवन-दर्शन है, जो धर्म पर विश्वास रखता है और अहिंसा आदि सद्व्रतों के पालन करने की प्रेरणा करता हैं और फिर अहिंसादि का विश्लेषण करना धर्म का काम है, यही भारत की विशेषता रही है कि आयुर्वेद धर्म का सहायक तथा धर्म आयुर्वेद का सहायक रहा है। जैन धर्म में जो तप का महत्व तथ वनस्पति विज्ञान तथा भोजन का सूक्ष्म विवेचन प्राप्त होता है, उसकी आयुर्वेद के साथ घनिष्ट समानता है।

जैन धर्म कन्द मूल के भोजन का परित्याग करवाता है, उसका कारण भी वैज्ञानिक है। प्रत्येक धार्मिक अन्धकार में पलने वाली वनस्पतियों का सेवन नहीं करे, क्योंकि उसमें सत्व गुण की प्रधानता कम रहती है।

वृक्ष के ऊपर धूप में पकने वाले फल और जमीन की तहों के नीचे अन्धकार में पलने वाली वनस्पतियों में बहुत अन्तर रहता है।

जेन धर्म समस्त तिथियों के तो वनस्पति सेवन की मर्यादा करवाता है, जैसे—दूज, पचमी, अष्टमी, एकादशी, पूर्णमासी को। कारण कि चन्द्रमा की कला बढ़ने या घटने के साथ जीवन और वनस्पति में पानी का अतिरेक बढ़ता है। अधिक से अधिक

पानी रोग का कारण बनता है। यह तो स्वास्थ्य दृष्टि के अनुकूल तो है ही किन्तु साथ में अहिंसा के पालन करने में भी ये मर्यादाएं सहायक हैं।

जैन धर्म के समस्त व्रत विधान तथा आचार नियमों का आयुर्वेद पूर्ण समर्थन करता है और यही क्या बौद्ध तथा वैदिक धर्म भी जिन विधावों को मानव के लिये आवश्यक निर्दिष्ट करते हैं, आयुर्वेद उन तमाम धार्मिक शुभ मर्यादाओं तथा अहिंसादि व्रतों को आरोग्य के लिये अत्यावश्यक मानना है। आत्मवाद, मनोयोग तथा ज्ञानेन्द्रियआदि सभी धार्मिक तत्वों पर आयुर्वेद अपने समर्थन की मुहर लगाता है। एलोपैथी, होमियोपैथी आदि तमाम पाश्चात्य चिकित्सा-पद्धति में भारतीय संस्कृति तथा मानवात्मा का संरक्षण करने में असमर्थ है।

अभी तक जो विचार धाराएं आत्मा तक को स्वीकार नहीं करती वे मानव का उद्धार क्या करेंगी ? अत: मैं आज सब को यह उद्बोधन दूंगा :—

भारतीय इन्सानों ! अपनी परम्परागत विरासत जो विज्ञान की अमूल्यतम निधि है, कल्याण की कुञ्जी है, उस परम पुनीत धर्म के सहायक आयुर्वेद का संरक्षण करो, यही तुम्हारे लिये वरदान है।

———

चरित्र

नीति धर्म अथवा मोक्ष धर्म को जैन धर्म में चरित्र धर्म कहा गया है। चरित्र शास्त्र का काम श्रेय के बारे में लगातार चिन्तन करना ही नहीं हैं। अपितु उसके अनुसार अशुभ से शुभ और शुभ से शुद्ध की ओर जाने वाले साधनों को भी निर्देश करना है।

मोक्ष का आदर्श कितना ही क्यों न वैयक्तिक हो किन्तु उसे सामाजिक नीति धर्म से हम सर्वथा विच्छेद नहां कर सकते।

साधु कितना ही क्यों न एकान्त मोक्ष का अभिलाषी हो उसे भूत, सत्व जीव, और प्राणियों पर दया, उपकार, प्रचार, पथ-प्रदर्शन की भावना तो रखनी ही होगी। इसलिये जैनधर्म में नीति शास्त्र और मोक्ष के साधन परस्पर में एक दूसरे के पूरक भी बन गये हैं।

केवल दोनों में अन्तर यह रहता है कि नीति का निर्माण मानवीय समृद्धियों, उपयोगिताओं, भौतिक सुखेषणाओं तथा वर्तमान लाभों को लक्ष्य में रख कर होता है और मोक्ष मार्ग का निरूपण त्रिकालबाधित तथा आत्म-विशुद्धि को लक्ष्य में रख कर होता है।

देव, गुरु, धर्म और अन्तरंग आत्मा सद, असद, निर्णय की

वृद्धि के साथ मिल कर जो पथ अपनाया जाता है वह सच्चा मार्ग है। तो भी जैनधर्म में इन सबसे ऊंचा एक आदर्श रखा है वह है मनुष्य की कृत्य बुद्धि—सद, असद, बुद्धि अर्थात् अन्तरंग आत्मा का स्थान है।

सच्चा निर्णय देने का अधिकार जो तुम्हारी आत्मा स्वीकार करे अन्तररंग आत्मा समर्थन करे—वह कृत्य सब धर्म हैं, वे क्रियाएं सब तुम्हें उस परम आत्मा दर्शन की ओर ले जाने वाली हैं।

जहा सुहं देवाणु प्रिय ! का यही आशय है। यही अर्हन्तों की बार २ ध्वनि है।

अन्तरग आत्मा उस उच्च आदर्श की ओर प्रेरित होती है जिसे परम धाम मुक्ति तथा सिद्ध लो कहा जाता है। इस लिये चारित्र को आदश भी कहा गया है। आदशन्विषी विज्ञान शब्द उस चरित्र के लिये अधिक उपयुक्त होगा।

नीति माग अथात मोक्ष मार्ग का सर्वोच्च यही ध्येय होता है कि वह आदश का ज्ञान, विश्वास और जाने का रास्ता बता दें। इसीलिये जैन धर्म में सम्यक् ज्ञान-दर्शन तथा चारित्र की त्रिपुटी को ही मोक्ष का मार्ग स्वीकार किया है।

जैन धर्म उस आध्यात्मिक ज्ञान की शक्ति पर पूर्ण विश्वास करता है, जिससे अपने बन्धनों को सदा के लिये तोड़ देता है। महावीर कहते हैं, गौतम ! जो जानता है वही तोड़ता है। ज्ञान का सार्थकता अन्धकार को भगाता है और धर्म की सार्थकता उस प्रकाश में दिखाने वाले दोषों को दूर कर अलौकिक स्थान को स्वच्छ बनाता है। जैनधर्म में जिससे तत्त्व का यथार्थ

दर्शन मिलता है, उसे सम्यक ज्ञान कहा जाता है। और जिससे तत्त्वार्थ पर अडिग-अडोल विश्वास प्राप्त होता, ऐसे दृढ़ प्रतीति को सम्यग् दर्शन कहा जाता है और जिससे जीवन को अन्तरंग तथा बाह्य सभी ओर से स्वस्थ और संशोधित रखा जाता हैं, ऐसी दोष निर्नाशिनी और गुण विकासिनी पद्धति को सम्यग् चारित्र कहा जाता हैं। मानव मात्र के विस्तृत जीवन में ज्ञान का अलोक, परम सत्य की श्रद्धा और विशुद्ध जीवन शोधन की प्रक्रिया व्यवस्थित रीति से काम करती है, जो इसका अवलम्बन लेता वही इस ससार में सच्चा आध्यात्मिक यात्री है, मुमुक्षु है और परम सुख प्राप्ती का साधक है।

महावीर कहते हैं कि गोतम ! संसार का कोई भी प्राणी मनन- चिन्तन पर अपना विचार थोपने की आग्रह वृत्ति न रखे, किन्तु वह अपने ज्ञान दर्शन तथा चरित्र को अपने आत्मिक स्वाभावानुसार निर्माण की स्वतन्त्रता रखता हुआ भी सम्यक् की कसौटी को सभी हाथ से नहीं जाने दे, नहीं तो वहा उच्छृं-खल मानव मोह में आकर असम्यग् को अपना उपास्य मान बैठेगा। इसी की और तुम मानव का लक्ष्य खिचते जाओ।

ज्ञान और श्रद्धा की बात आप सुन आये हो, चरित्र की अब बात कहीं जाने वाली है, क्योंकि आत्मा के ज्ञान और विश्वास का सार शुद्धाचार है। मानव-जीवन में चारित्र्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। किसी भी मनुष्य को ज्ञान और उसके कोरे विश्वास से नहीं आका जा सकता, संसार तो उसके चरित्र से उसके जीवन की यात्रा को माप करता है। यही क्या विश्वास और ज्ञान जब तक क्रियात्मक जीवन में सत्कारित नहीं हो जाते तब तक मनुष्य किसी भी उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सकता।

संसार एक अविराम अनन्त प्रवाह है तो क्या जीवन उसमें नदी के पत्थर की तरह सदा परस्पर टकराता ही रहेगा ? क्या मानव को इसी संसार में ही चलना है ? कहीं भी उसका आश्रय स्थल नहीं आयेगा तो सदाचार विश्वास और अन्वेषण सब व्यर्थ प्रयास गिने जायेंगे। अवश्य ! आत्मा कोके कर्मो बन्धनों से मुक्ति प्राप्त होगी। आत्म दर्शन ही चारित्र का वह शुभ फल है जिससे मानव अपने पुण्य, अन्तिम श्रद्धा तथा लक्ष्य को सुनिश्चित नीति से प्राप्त कर लेता है।

श्रमण धारा के जैन तत्त्वज्ञान में यही एक सबसे बड़ी विशेषता है कि जीवन को अनन्त सुख की ओर ले चलने का आश्वासन देती है और धीरे-धीरे दुखों के समस्त कारणों को विध्वंस करके मुक्ति-पथ का जीव को यात्री बनाकर शाश्वत शान्ति प्रदान करती है।

उस परम सुखमय मुक्ति का जो राजपथ जैनधर्म ने निर्माण किया हैं, वह है ज्ञान दर्शन, और चरित्र का समन्वय ! इन तीनों का सुमेल ही उस शाश्वत संगीत का आरोह बनता है। जो गायक को मुक्ति में सदा के लिये प्रतिष्ठित कर देता है।

ज्ञान, दर्शन और चरित्र की त्रिवेणी धारा सीधी मुक्ति की ओर बही जा रही है किन्तु मानव अपनी-अपनी क्षमता अनुसार प्रगति करता है। उदेश्य के सही पथ को पहचानना तो ज्ञान की बात रही और उस पर विश्वास करना श्रद्धां की बात है किन्तु किन्तु चलना तो अपनी शक्ति पर निर्भर है।

कोई मन्द चलता है और कोई तीव्र। तीव्र चलने वाले को अपनी तमाम मनोवृतियों को केन्द्रित और शरीर के अवयवों को एकत्रित तथा तमाम उपाधियों को संकुचित करके भागना

पड़ता है। भागना जरा टेढ़ी खीर है, मापने के लिये बोझ और मूच्छा को, आलस्य के प्रमाद को सर्वथा त्यागना पड़ता है और मन्द २ चलना तो सुविधानुसार भी हो सकता है। भगवान् महावीर उसी प्रश्न को इस प्रकार बताते हैं:—धम्मे दुविहे पण्णत्ते तंजहा:—धर्म: मुक्ति पथ पर चलने का प्रकार दो प्रकार का है आगार धर्म अर्थात् घर में रह कर सांसारिक कर्त्तव्यों को पूरा करते हुए राष्ट्र और विश्व के सांसारिक कर्त्तव्यों को पूरा करते हुए भी मुक्ति की ओर जाने का रास्ता। अनागार धर्म—अर्थात् घर छोड़कर परिग्रह मूर्छा त्याग कर विषयतृष्णा को ठुकरा कर मुक्ति को जाने का रास्ता। और मुक्ति का अर्थ है आत्म-दर्शन परमात्म प्राप्ति तथा विदेह मुक्ति का लाभ। निर्वाण। सिद्ध। शास्त्रीय में जीवन-शोधन से ज्ञात दोषों को पूर्णत करने की दृढ़ प्रतिज्ञा वाला अनागारी और ज्ञाताज्ञात दोषों की ओर मन्दता से नष्ट करने की ओर बढ़ने बढ़ने वाला सागरी हैं। व्रत तो महान् और अणु दोनों रूप का हो सकता है। व्रत एक है, किन्तु पूर्ण और अंशत: ये उसके दो छोर हैं, उसके पाने के ये दो प्रकार हैं और सर्व-अंशत: इन भेदों में भीं ये विभक्त हो सकते हैं व्रत, जब महानता से अर्थात् पूर्णता से अंगीकार किये जाते हैं तो महाव्रती और अणु रूप से स्वीकार किये जायें तो साधक कीं अणुव्रतीं संज्ञा हो जाती है।

वृतों का स्वरुप

नियम की परिभाषा:---

जीवन को सुधर और आत्म-आलोक की ओर ले जाने वाली मर्यादाओं को धर्म में नियम माना गया है अथवा हमें उन्ही नियमों का नियम मानाना चाहिये जो सार्वभौम हों और जो सम्पूर्ण प्राणी वर्ग के लिये सर्वथा हितावह बन सकें।

तीसरी एक परिभाषा और भी हो सकती है कि व्रत उसे कहते हैं जिससे स्व-पर का हित साधन हों सके।

जैनधर्म ने संसार में पांच दोषों को मुख्यता से प्रतिपादन किया है.—हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन, परिग्रह। इन पांच दोषों के कारण ही मानवता संत्रस्त है और कुचली जाती है। इन दोषों के व्यक्तिगत प्रभाव के कारण मानव, राक्षस, दानव, चोर, लुटेरा व्यभिचारी, लोभी, स्वार्थी, प्रपंची मायावी न जाने क्या बन गया है। यदि हम इन दोषों से मानव को धोकर स्वच्छ कर दें तो आत्म को परमात्मा बनने में एक क्षण भी न लगे। ये दोष मानव अथवा अन्य प्राणी में जन्म जन्म के कुसंस्कार के कारण तथा अज्ञानवश चिपक गये हैं। भगवान् ने अपने आत्मा-दर्शन में किन्हीं दो आत्म-शत्रु बताया है। और राग तथा द्वेष को इन दोषों का जन्मदाता।

आज तक मानव जाति के इतिहास और सभ्यतां में तथा प्राणियों की सृष्टि में जितने भी दोषों का प्रादुर्भाव हुआ है, इन्हीं पांचों मेंसे किसी एक के आधार पर हुआ है। इन पांचों में से भी हिंसा दोष सबसे महानतम है, सबसे विराट् है और सबसे विशालतम है।

हिंसा का अर्थ है प्राणों का वध, पांचों इन्द्रियें प्राण हैं, क्योंकि पांचों मानव के सम्वेदन और ज्ञानानुभूति के सर्व प्रथम

भौतिक आधार हैं ।

मन इन्द्रियों का सर्वोच्च अधिकारी है, वचन मन में उठने वाली विचार तरंगों कि भिव्यक्ति ही साधन है और शरीर इन इन्द्रियों का आधार है ।

श्वासोश्वास प्राणी के भौतिक जीवन धारण की एक अनिवार्य प्रक्रिया है । और आयुष्य जीवन की निश्चित अवधि या रस है जिसे पकड़ कर अनन्त का यात्री मानव इस संसार-सागर में डुबकियां लगा रहा हैं ।

यह दस प्राण हुए । इन प्राणों से वध को हिंसा कहा गया ।

भगवान ने हिंसा-अहिंसा का स्वरूप बताते हुए कहा है:—हिंसा:—प्रमाद में छिपी हुई है और अहिंसा विवेक में । किसी के प्राणों का वध हो जाना अथवा मारा जाना इतना ही नहीं, अपितु मारे जाने के पीछे भावना की क्या परम्परा चल रही है इसे समझे बिना हिंसा अहिंसाका स्पष्टीकरण कभी नहीं हो सकता है हिंसा वही होता है जो प्रभाववश अर्थात् रागद्वेष के वशीभूत होकर जो प्राणों का वध किया जाता है । यह हिंसा दूसरे प्राणों में से किसी भी प्राण की जा सकती है. और समूचे प्राणी की भी । वह सब दोष में समाविष्ट होगी हिंसा मन से हो वाणी से हो अथवा काया से अथवा तीन कारण और तीन

प्रश्न उठता है कि किसी की रक्षा करते हुए भी प्राणहानि हो जाये अथवा भुलचूक से तो क्या हिंसा होगी ? उत्तर स्पष्ट है कि रक्षा करते हुए यदि प्राण हानि हुई है और तुम्हारा विवेक पूर्ण जागृत रहा है. तो तुम्हें हिंसा नहीं होगी, यदि असावधानी पूर्वक हिंसा होगी तो अवश्य वह हिंसा हिंसा ही कहलायेगी ।

असावधानी को ही प्रमाद कहा गया है और प्रमादवश (राग-द्वेष वशीभूत) जो प्राणों के वध की प्रक्रिया है वही हिंसोत्पादिया है। प्राण-वध स्थूल क्रिया है, और प्रमाद योग सूक्ष्म भेद। इस सूक्ष्म योग की भावना पर ही हिंसा-अहिंसा अवलम्बित है।

यद्यपि विवेक से अप्रेशन करते हुए किसी चिकित्सक के हाथों से रोगी की आयु पूर्ण होने के कारण मृत्यु हो सकती है, वह मृत्यु व्यवहारिक अथवा द्रव्य हिंसा होने पर भी कर्म-बन्धकता का कारण नहीं बनती अपितु चिकित्सक के हाथों से जान बूझ विपरीत विष मिश्रित औषधि देने पर भी रोगी के आयु के लम्बी होने के कारण निरोग हो जाने पर भी वैद्य हिंसा का भागी होता ही है। हिंसा और अहिंसा प्राणियों की भावना पर अवलम्बित है। वास्तव में अहिंसा की यही व्यावहारिकता है।

केवल प्राण-वध को ही (द्रव्य हिंसा) हिंसा मान लिया जाय तो संसार के असंख्य सूक्ष्म, स्थूल, गोचर, अगोचर जीवों को हिंसा से कोई भी प्राणी विमुक्त नहीं हो सकता है। किन्तु जैन धर्म ने हिंसा को क्रिया पर ही नहीं अपितु मुख्यतया भावना को ही हिंसा और अहिंसा की कसौटी स्वीकार की है।

हिंसा मानव की प्रमादवश होने वाली भूलों का फल है, जिनमें अपना और पर का हित अनहित छिपा होता है।

हिंसा का मापक यन्त्र वाणी की शुभाशुभ भावना है।

अब मैं प्रश्न उठता है कि प्राण-नाश अथवा प्राण-वध को हिंसा मानने का फिर क्या कारण ? केवल प्रमाद योग को ही हिंसा क्यों न मान लिया जाय ?

उत्तर स्पष्ट है कि प्राण-वध हिंसा का स्थूल रूप है, जिसे सार्वभौमिक रूप से अपनाया जा सकता है। हिंसा का मोटा रूप प्राण वध व्यापार है और सूक्ष्म रूप प्रमत्तयोग। सूक्ष्म तक पहुंचने के लिये स्थल को समझना और उसका त्याग करना आवश्यक है। दूसरी बात यह भी है कि समाज की सामुदायिक हित भावना—सुख समृद्धि के लि प्राण-वध रोक देने मात्र से भी शान्ति का प्रसार होता है। सामुदायिक जीवन-विकास और सुख-शान्ति के लिये हिंसा—प्राण-वध को ग्रहण किया गया है।

हिंसा पिशाचनी की दासता से मुक्त होने के लिये आवश्यक है कि :—

१—जीवन की आध्यात्मिक साधना की ध्याम बढ़ाई जाय और भौतिक आवश्यकताएं कम की जायं तथा अधिक से अधिक जीवन को सादा बनाया जाय।

२—मन की उन चित्त-वृतियों को प्रोत्साहन दिया जाय जिनसे मानसिक कोमलता बढ़े और कठोर को स्वल्प होती चली जाय।

३—जीवन के मूल्य और परहित की ओर सदा जागरूक तथा सावधान रहा जाय।

असत्य

असत्य बोलना एक महान् दोष है, क्योंकि या तो अस्तित्व रखने वाली वस्तुओं के प्रति वक्ता को आत्मा-प्रपंचना करके

वस्तु जिस रूप में है उसे वैसा न कह कर अन्य का कथन करना पड़ता है, वह भी असत्य है। जो दूसरों को पीड़ा पहुंचाने के लिये बोला जाता है, उस दुर्भावयुक्त सत्य को भी असत्य कहा जाता है।

इस असत्य को उदाहरण की भाषा में इस प्रकार कहा जा सकता है कि तुमने किसी का धन लिया किन्तु जब उस लेनदार ने मांगा तो तुम ने साफ निषेध कर दिया, यह असत्य है। अथवा किसी गरीब को दुःखाने के लिये भरी सभा में बोलना कि तू कंगला है, यह भी असत्य है।

इस दोष से बचने का दो उपाय—(१) प्रमत्त योग का त्याग, मन वाणी और काया की एक रूपता, सत्य को दुर्भावयुक्त अप्रियकारी न बोलना।

चोरी

बिना दिये लेना स्तेय—चोरी है। वृत्ति को स्वछन्द छोड़ देते हैं तो वह वृत्याधित मानव अनधिकृत वस्तु पर भी अधिकार करता है, न्याय समाप्त कर देता है। अपने लालच को दूसरी प्रकार से पूरा करता है।

मैथुन

मैथुन प्रवृति अब्रह्म है। कामवश स्त्री और पुरुष के सम्बन्ध की लालसा को अब्रह्म कहते हैं। मैथुन को अब्रह्म कह कर यह सूचित किया गया है कि आत्मा के सद्गुणों का कामदोष नाश करने वाला है। ब्रह्म से आत्मीय गुण ध्वनित होता है। मैथुन में पड़ते ही आत्मिक गुणों का नाश और शक्ति का ह्रास होने लगता है।

परिग्रह

मूर्च्छा परिग्रह है। भौतिक वस्तु पर आसक्ति रखने से विवेक नष्ट हो जाता है, आत्म-स्वरूप भूल कर प्राणी वस्तु प्रधान होकर राग-द्वेष वशीभूत होकर अनेक दोषों का अर्जन करता हुआ लक्ष्य-भ्रष्ट हो जाता है।

मूर्च्छा और आसक्ति दोनों दोषों का मूल है। मानव-जाति और प्राणी सृष्टि के यह पांच दोष हैं। यह दोष क्यों है, किस रूप से हैं, इनका क्या मार्ग है। साधारण मानव इनको सहज वृतियां भी मान सकता हैं।ठीक है मोहग्रस्त मानव और प्राणी की यह दोषग्रस्त प्रवृत्तियें होती हैं, किन्तु अध्यात्म के यात्री और मुक्ति के साधक को विश्व-शान्ति और मानवता के अमर पुजारी को तो इन दोषों का शमन करना ही पड़ेगा।

आंज तक इतिहास साक्षी है कि मानव इन्हीं दोषों के कारण अपना और संसार का अहित करता आया है। यदि

इन दोषों का शमन हो जाय तो शान्ति और परम सुख प्राप्ति में कोई देर नहीं।

किन्तु इन दोषों को त्यागना कोई सरल काम नहीं। समूचा संसार प्रमाद की गहरी नींद में सो रहा है, जो इस प्रमाद को छोड़ता है और अपने अन्दर से ढोंग, कपट, भोगों की लालसा और असत्य का आग्रह; इन तीनों सल्यों अर्थात् बुराई को त्यागे बिना इन व्रतों को कभी भी पालन नहीं कर सकते। अतः आवश्यकता है कि मुमुक्ष को अपने जीवन के अन्तर और बाह्य में और इन तीनों बुराइयों को त्याग कर व्रती बनने का दोषों को नष्ट करने का दोषों को नष्ट करने का और सच्चा साधक बनने को तैयार होना चाहिये।

हो सकता है कि संसार का हर मानव इन दोषों को सर्वथ दूर करने का साहस न रखता हो, उसके लिये व्रतों के अनुरूप की व्यवस्था की गयी है। जैन धर्म की आचार पद्धति में इन व्रतों का ही मुख्य क्रम है।

व्रतों के दो रूप में से :—एक सर्वांशतः पालन करने वाला उन्हें जैन धर्म में साधु—श्रमण कहा जाता है और दूसरा जो इन व्रतों को अंशतः, अणुरूप से स्वीकार करता है उसे श्रावक कहा जाता है। श्रावक के बारह व्रत हैं।

● ●

आत्म-सिद्धि

आत्मा प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध होती है। १ प्रमाण है। क्या है ? हम अनुभव करते हैं—मैं सुखी हूं। मैं दुखी हूं। मैं शरीर के सुख-दुःख के साथ अपने अपने आप को मिला नहीं देता। शरीर के किसी अंग के कट जाने पर भी मैं नष्ट नहीं होता। जो द्रष्टा, ज्ञाता और ध्याता है—वही आत्मा है। यही धारणा हमें आत्म विश्वास देती है—जिसके आधार से हम खड़े रहते हैं।

यह भी प्रत्यक्ष है कि जो अपना आत्म विश्वास खो देता है—जो विश्वास हीन हो जाता है। उसका शरीर लड़खड़ाने लग जायेगा। निर्बल हो जायेगा।

हमारे जीवन में आने वाली व्यथाओं में शोक और चिन्ता का विशेष स्थान है। शोक भूतकाल में अपने मन के विपरीत हुए व्यवहार के प्रति होता है—जिसके कारण मन आकुल व्याकुल हो जाता है। चिन्ता-भविष्य में होने वाली व्यवस्थाओं की असभवता से उत्पन्न होने वाली आशंका है—जो हृदय विदारण करती रहती है मन में आता है—खाने को नहीं मिलेगा तो क्या होगा ? लड़की जवान हो चली है—इसका विवाह करना है—पर साधन उपलब्ध नहीं।

आपका मन चिन्ता, इच्छा द्वेष आदि से आक्रांत होता है। आप सोचते हैं—मैं २५ लाख का व्यक्ति हूं। मुझे लोग क्या

कहेंगे—यदि मैंने छोटे से डाक्टर की दवा खाली। आप अपनी पोजिशन का ध्यान रखते हैं। पर मात्र फकीर किसी की परवाह नहीं करता।

मातायें गहने सजाकर आती हैं—इसलिये कि लोग उन्हें निर्धन न समझ लें।

अच्छाई और बुराई को समझने वाला। मन के विकारों का अनुभव करने वाला कौन ? वह आत्मा है।

१ मिनिट के लिये मान लो—एक खबर आती है—अमुक देश में भूकम्प आ गया। हजारों लाखों लोग तबाह हो गये। मकान धंस गये। हजारों घर के दीपक बुझ चुके। व्यापार नष्ट हो गया।

यह समाचार सुनकर यहां जितने लोग हैं—इन सबके मन में भिन्न-भिन्न विचार आयेंगे। जिनको उस भूभाग से से इन्टरेस्ट है—उनकी गति ही निराली हो जाती। जिसके रिश्तेदार उस भूभाग में होंगे—वे कितने व्यथित होंगे यह जरा समझने की बात है।

महात्मा गांधी के गोलीयरुपी गोली लगने के समाचार ज्यों ही आल इंण्डिया रेडियो से सुना—वहां के वहां ही कुछ लोग तो हार्डफैल होकर मर गये। कुछ लोग हक्का-बक्का हो गये। कुछ लोगों ने मिठाई बांटी। ये अन्तर क्यों पड़ा ?

यह है आपकी आत्मा का दृष्टि कोण ! जहां इच्छा द्वेष है—वहां ही आत्मा है।

हम दया चाहते हैं। किसी का भला करना चाहते हैं। वहां आत्म विचार होता है। जहां राग द्वेष, ज्ञान, अज्ञान रहता है—वही आत्मा है।

अनुमान से भी आत्मा सिद्ध होती है। इंद्रिया स्वयं ज्ञान

नहीं करती। इन्द्रियां नष्ट हो जाने पर भी ज्ञान नष्ट नहीं होता। हम महसूस करते हैं—इन्द्रियां साधन हैं। मन साधक है। इन्द्रियां मन का करण है। और मन आत्मा का करण है। करण का अर्थ साधन होता है।

कुछ लोग कहते हैं। मन ही आत्मा है। हृदय और बुद्धि में फर्क है। मन का काम मनन करना है हृदय भावना का भण्डार है। बुद्धि का काम विश्लेषण करना है। यदि तुम मन को ही आत्मा मान लो तो—आप विचार करिये कि कभी-कभी मन कहता है—यह करना पर अन्दर से फटकार आती है यह अनुचित है। यह फटकार देने वाला कौन वही आत्मा है।

चोरी करने वाला १० हजार का माल मार लेता है। मन प्रसन्न होता है—पर आत्मा कहती हैं—यह आहरण अवैधानिक है—यह उचित नहीं।

कुत्ते की बात मैं कह चुका हूं। उसने कोई धर्म शास्त्र नहीं पढा। फिर भी वह चोरी की रोटी लेकर भाग जाता है। और प्रेम से डाली हुई रोटी को दुम हिलाता हुआ खाता है।

आत्मा और मन का यह द्वन्द्व आत्मसिद्धि करता है।

मन हजार गलत रास्ता पकड़े अन्दर की आवाज उसे फटकारती रहती है।

चोर की छाती होती है—पैर नहीं। उसे डर है—कहीं पकड़ा न जाऊं। आत्मा ने फसने का भय मन को दिया।

मन तो सब कुछ लेना चाहता है—पर आत्मा की आवाज लेने नहीं देती।

आत्मवादी को जरा सी भूल के लिये व्याकुलता हो जाती है।

जो लोग रोजाना पाप करते हैं—उनकी अभ्यस्तता के

कारण आत्मा की आवाज दब जाती है।

भेंस के आगे बीन बजाने का कोई महत्व नहीं—इसी प्रकार आत्मा का आवाज का पापी के सामने कोई महत्व नहीं।

कबूतर जरा से खटके से उड़ जाते हैं—परन्तु लुहार के घर के या मंदिर के नक्कारखाने के कबूतर आवाज की परवाह नहीं करते।

सड़कों के कुत्ते अभ्यास के कारण मोटर के सामने मरे पड़े रहते हैं—पर जंगल के गीदड़ मनुष्य की शक्ल देख कर ही भाग जाते हैं। पापी की आत्मा जो आवाज करती है—उसे उनका मन नहीं सुनता।

अनुमान से आत्म सिद्धि होती है। इन्द्रियों का निर्माता कोई जरूर है। अन्यथा एक इन्द्रिय के जाने हुए विषय का विवेचन दूसरी इन्द्रिय कैसे कर सकती थी। दोनों इन्द्रियों के अनुभव का एकीकरण एक स्थान पर होता है—वह स्थान अनुभववान सत्ता आत्मा है।

उपमान से भी आत्मा सिद्धि होती है। कुछ लोग कहते हैं। पंचभूत इकट्ठे होने से आत्मा का निर्माण होता है यदि भूतों के केन्द्री करण से ही आत्मा उत्पन्न हो तो घट में पृथ्वी, अप, तेज वायु अभी आकाश का एकत्री करण हुवा है। वहां आत्मा का व्यक्ति करण नहीं हुवा। वहां चेतना की उपलब्धी क्यों नहीं हुई। अतः सिद्ध हुवा कि जो वायु उपादान में नहीं वह कार्य में नहीं आ सकती!

दूध में मक्खन है इस लिये निकलता है। रेते में से तो नहीं निकलता?

आगम से भी आत्म सिद्धि होती है। आचारांग सूत्र में आत्म सिद्धि स्वीकार की गई। याज्ञवल्क्य आत्मा को मानते हैं।

मति श्रुति अवधि मनः पर्यय और केवल ज्ञान का आधार आत्मा ही तो है।

इन्द्रियों के परे भी ज्ञान शक्ति रही हुई। आप वृत्तियों का निरोध करिये—आप की दृष्टि अन्तर्मुखी हो जायेगी। फिर आप आंखें बन्द करके भी देख सकेंगे? बिना कान से सुन सकेंगे?

शास्त्र से भी सिद्ध हुवा कि आत्मा है। पर प्रश्न यह है कि आत्मा का स्वरूप क्यों है?

किसी वस्तु के विवेचन में स्वरूप का बताना आवश्यक है। हम वर्ण गंध रस और स्पर्श द्वारा वस्तु का स्वरूप बताते हैं। पर शास्त्रकार कहते हैं कि—आत्मा आया अरूवे, अगन्धे, अरसे अफासे।"

आत्मा में रूप गंध, रस और स्पर्श कुछ नहीं होता।

यदि कोई पूछे कि नीच जात कैसी होती है। हम उसकी आकृति से उसका स्वरूप बता सकते हैं। पर आत्मा की कोई आकृति नहीं।

हाथी बताने के लिये भैंस के मोटेपन की कल्पना के साथ दांत कान और पूंछ तथा उसके पैर का वर्णन बताया जा सकता है। पर आत्मा के लिये ऐसे कोई बाह्य चिन्ह नहीं हैं।

आत्मा की पहचान के लिये—शब्द, गंध, रूप, रस और स्पर्श का आधार निराधार सिद्ध होता है।

काकेशियस जाति को तुम रूप से किसी पुल को गंध से, पहिये आदि को स्पर्श से और ईख आदि को रस से पहचान जाते हैं। इसी प्रकार इनमें से किसी एक से या सब के सब से आत्मा की पहचान नहीं होती।

एक प्रश्न और रह जाता है आत्मा का आकार क्या है?

आत्मा २–इंच ६–इंच, २ गज या हजार गज होती है क्या ?

आकार और रूप में फर्क है। आत्मा अरूपी है। उपयोग निराकर है। पर आत्मा देहाकार होती है।

शंका हो सकती है—आत्मा जो हाथी या व्हेल के आकार की है—एक चींटी या कंथुवा के आकार मे कैसे समा जायेगी ?

आपने दीपक देखा है। उस दीपक को एक अलमारी में रखिये, एक कोठरी में रखिये, एक बड़े कमरे में रखिये और एक हाल में रखिये। ज्यों-ज्यों स्थान का आकार बढ़ता गया दीपक का प्रकाश भी विस्तृत होता गया। इसी प्रकार आत्मा जिस देह में रहती है—उसी के आकार की हो जाती है।

यदि कोई कहे कि आत्मा सारे विश्व में व्याप्त है—तो यह अन्य पदार्थों में भी आत्मा का समावेश हो जायेगा—अतः यह समझना भूल है।

आत्मा शरीरगत या वसुरगत व्यापक है। वह शरीर परिणामी है। यदि सब जगह फैली हुई मानों तो नख काटने पर कष्ट क्यों नहीं होता ? जो नख आगे बढ़ा हुवा होता ? जो नख आगे बढ़ा हुवा होता है वह अचेतन होता है।

आत्मा शरीर के आकार की होती है। विशेष रूप से आत्मा के लक्षण। उसका विवेचन आगे किया जायेगा। हमें जानना है—आखिर यहां आत्मा क्या है ?

आपको आत्मा ज्ञान की जिज्ञासा है। यह अच्छी बात है।

आत्मा ज्ञान रखने के लिये मौत का त्याग और प्रेम का आस्वादन करना होगा।

आत्म का अस्तित्व

आत्मा की बात कहने के पूर्व मुझे उस शैले की बात सदैव याद आती जाती है—जो आत्मा की खोज में सारी जिन्दगी बिता गया। वह फिलासफर था और जिन्दगी भर तक यह ढूंढता रहा कि 'मैं कौन हूं।'

फिलासफरों की गिनती प्राय: पागलों में की जाती है। फिलासफरों को प्राय: दुनिया पागल समझती है और फिलास-फर दुनिया को।

एक बार शैले अपनी धुन पर सवार—सैर करने को जा रहा था। बैंत उसकी अंगुलियों में नाच रही। और वह न जाने किस दुनिया में घूम रहा था? छड़ी अंगुलियों से फिसली और साथ ही चलने वाले किसी व्यक्ति से टकरा गई। व्यक्ति का अभिमान विचलित हो गया। उसने डांटकर शैले से कहा—

'तुम कौन हो?'

शैले जो बेहोश में था होश में आया। उसके शब्द कानों में प्रति-ध्वनित हुए। उसने उन शब्दों पर विचार किया। तुम कौन हो'—और बड़ी नम्रता से कहा—

'मित्र, यदि तुम मुझे यह बता दो कि मैं कौन हूं। तो मैं अपनी सारी जिन्दगी कमाई तुम्हारे चरणों में अर्पित कर दूं। अधिक तो क्या यदि मैं इस सारे भूमण्डल का स्वामी होता तो सारा भूमण्डल तुम्हें भेंट करते हुए अपार हर्ष होता।

शैले ने वह बात कही जिसकी महत्ता को हम नहीं वही भ्रांक सका था। सारा जीवन वह इसी विचार में बिता गया कि—वह कौन है। भ्राज तक भी यही सोच रहे हैं। 'मैं कौन हूँ।'

'मैं कौन हूँ' इसमें कौन शब्द का उत्तर देने के लिये ही विश्व के सभी धर्म ग्रन्थों की रचना हुई है। क्या जैन शास्त्र, क्या उपनिषद, क्या भ्रन्य दर्शन शास्त्र इसी के उत्तर में व्यस्त हैं 'वे यही बतलाते हैं कि भ्रात्मा क्या है।

याज्ञवाल्क्य ने वृहदारण्यक के भ्रारंभ में कहा—भ्रथातो ब्रह्म जिज्ञासा।' कालापयिनी धन पाकर प्रसन्न हो गई। पर गार्गी कटती है—

'मुझे वह भ्रमृत दो जिसे पाकर मैं भ्रमर हो जाऊं।'

महारानी मीरा—भाद्र बन गई। क्यों ? वह कहती है इस नश्वर सुहाग का क्या करू। मुझे वह भ्रनश्वर सुहाग चाहिये-वह भ्रमर सुहाग चाहिये, सदा के लिये भ्रमर बना दे। वह नश्वर पति व्यर्थ है।

गार्गी का कहना है वह भ्रमृत दो—जिसे पाकर भ्रमर हो जाऊं।

भ्राज के सभी डाक्टर यही तो कर रहे हैं। वैज्ञानिक भी इसी खोज में हैं कि–इन्सान भ्रमर किस प्रकार बने। पर भ्रमीर गरीब, वंज्ञानिक डाक्टर सब मर गये जो लुकमान हकीम थे या भ्रफलातून थे।

पर कबीरदास ने कहा—मैं नहीं मानूंगा। वह मस्ती में भ्राकर कहता है—

राम मरे तो मैं मरू',
मेरी मरे बलाय।

सच्चे गुरु का चेलका,
मरे न मारा जाय ॥

मैं (कबीर) मरने वाला नहीं हूँ। मैं तो अमर हूँ। सद्गुरु की कृपा ही ऐसी है—जिसने मुझे अमर बना दिया।

कविवर घनानन्द—जिन्हें आनन्द घन भी कहते हैं—क्या बोल गये—

अब हम अमर भये न मरेंगे।

मरते कौन हैं जो शरीर को आत्मा मानते हैं। जो आंख, कान, आदि इन्द्रियां और बुद्धि मन आदि को आत्मा मान बैठे हैं वही तो मरते हैं।

जो आत्मा को चैतन्य और उपयोग युक्तमान (उपयोगों कक्षायाम्) वह क्या कभी मरता है ?

उद्गुण को आत्मा समझने वाले ही मरते हैं।

'उद्पाद व्यय ध्रौव्य युडसन।'

भौतिकवादी मरते हैं। उनका कहना है—गुड़ से नशा उत्पन्न होता है। गुड़ को पानी डाल दो। ४० दिन जमीन में रखो। उसमें विशेष प्रकार की रसायनिक क्रिया उत्पन्न होगी उसका अर्क खींच लो। शराब बन गई। पी जाइये नशा आ जायेगा।

गुड़ मिला पालव पिण्ड नशा हुआ। इसी प्रकार चेतन उत्पन्न हो जाता है—आत्मा की कल्पना केवल कल्पना ही है। यही पुनर्जन्म है।

आपने दीपक तो देखा है ? क्या है। एक मिट्टी का कटोरा है। उसमें रूई की बत्ती है। तेल भरा है। माचिस रगड़ो और रोशनी हुई।

मट्टी तेल बत्ती का बलिदान रोशनी करता है। इसी प्रकार शरीर के तत्व इकट्ठे होते हैं–एक शक्ति उत्पन्न हो जाती है। फिर नष्ट हो जाती है। आत्मा नामक वाह् कुछ नहीं।

चार्वाकों का यही मंतव्य है आत्म विरोधियों का पूर्ण पादप बड़ा प्रवल है उसका उत्तर बड़ा कठिन है।

बौद्धों का भी यही कुछ कहना है। वे अन्त:करण को ही आत्मा मानते हैं।

आत्मा का प्रश्न टेढ़ा है। उस गुड़ वाले से में पूछता हूँ आप मटकी में रेता और पानी डालिये—१-२ मास नहीं ६ मास रखिये और अर्क खींचिये क्या नशा आवेगा? नहीं। यदि नहीं तो गुड़ से ही क्यों नशा आता है। मालूम होता है–गुड़ में नशा विद्यमान है। वह व्याप्त होता है।

मिट्टी ले लो। आदमी बनाओ। गाय बनाओ। क्या दूध देगी आपकी गाय। रबर के आदमी और रबर की गाय उन जैसी अवश्य दीखेगी। पर उनमें जीवनीय शक्ति कहां से लाओगे?

मशीन के आदमी अरबों खरबों के हिसाब कर देंगे उनमें विवेक कहां। वे हिसाब क्यों करते हैं–इसका जवाब उसके पास नहीं।

गुड़ से नशा अभिव्याप्र हुआ। दीपक से रोशनी अभि-व्याप्र हुई। थी तो हुई।

पार्लिवपिण्ड को ही आत्मा मानों तो अनुभव का भण्डार कोन है? बचपन जवानी और बुढ़ापे के अनुभव में अनुसन्धान मिलाने वाला कौन? काया के परमाणु तो ७ वर्ष में पलट जाते हैं। पर बचपन के खेले हुये खेल आपको आज तक भी

याद हैं। यह याद रखने वाला कौन ?

यदि आप इन्द्रियों को आत्मा मानते हैं तो इनका परस्पर सम्बन्ध जोड़ने वाला कौन ? आंख से हम किसी को देखते हैं–और खयाल करते हैं कि यह वही है–जिसके बारे में सुना था सुनने और देखने का एक अनुभव कराने वाला कौन है।

आपने १० वर्ष पूर्व नीबू का आचार लिया था। अभी आपके सामने नीबू का जिकर किया जाता है। आपके मुंह से पानी आने लगता है। क्या कारण है ? आप कान से नीबू का नाम सुनते हैं मुंह से पानी आता है १० वर्ष की स्मृति इसमें आकर जुड़ जाती है। एक विचित्र सम्मिश्रण और विचारों का सम्मेलन हो जाता है। यह सब कुछ कौन करता है।

यदि कहा जाय कि इन्द्रिय आत्मा नहीं मन आत्मा है तो इस पर भी विचार करना होगा।

किसी बात को उखाड़ फेंकना सरल है पर बात को जमाना कठिन है। उखाड़ने वाले को तो इतना ही कहना है कि—'आत्मा नहीं है।'

परन्तु, आत्मा को सिद्ध करने के लिये पुलिन्दे खड़े करने होंगे।

हम निश्चय करते हैं—मैं हूं। २५ वर्ष पूर्व आँख से कोई वस्तु देखी थी—आँख फूट गई, २५ वर्ष बाद भी उसके रंग रूप का आप वर्णन कर सकते हैं। वह ज्ञान आँख के साथ समाप्त क्यों नहीं हुआ ? वह ज्ञान क़ायम रहता है। योग के चमत्कार से बिना आँख के देख भी सकता है।

अलाबख्श नाम का एक कश्मीरी आँख पर पट्टी बांधकर सांयकाल चलता था। सारे शहर में घूमकर आ जाता। उसने

विलायत में अपने चमत्कार दिखाये। आंख पर पट्टी बांधकर पुस्तक पढ़कर सुना देता था।

आंख बन्द कर लीं, देखने वाला कौन ?

आत्मा को नहीं मानने वाले विश्व में बहुत हैं। जो लोग आत्मा को मानने को कहते हैं, उनको भी पूरा विश्वास नहीं वरन् वे बच्चे के मरने पर रोते क्यों ? यदि उनमें आत्मा का विश्वास होता तो वे निर्मोही राज्य की तरह अपने आत्मीय के मरने पर भी चुप रहते।

हिन्दू और जैन लोग आत्मा की बातें ज्यादा करते हैं। परन्तु मरने पर ये रोते भी ज्यादा हैं।

जापान की जवान लड़की अपने पति के लिये भोजन लेकर खेत पर जाती है। वहां उसे पता चलता है कि उसका पति मर गया। वह इत्मिनान से भोजन करती है। और पति को उठाकर लाती है। उसका अन्तिम संस्कार कर देती है। वह जानती है—रोने पीटने की आवश्यकता नहीं। जो घटना घटने वाली होती है—घटती है।

ईश्वर में विश्वास करने वाले व्यक्ति भी रोते हैं। ईश्वर कर्त्ता को मानने वाले—प्रवचन करते हैं। खुदा के कुन पर जो बन्दा खुदा के कुन पर मरा। फिर रोने की क्या बात। कुर्बानी के पहले यदि बकरा मर जाये तो वह हराम का और आप मार दो तो वह हलाल का। ठीक है—परमात्मा मारे वह हराम का ? हिन्दू, मुसलमान जैन सब गिरे हुये हैं, रोते रहो। दूसरे को परेशान करो। और यह भी कहते रहो कि हम आत्मा को मानते हैं।

यदि मन को आत्मा माना जाये तो मन कहता है—आप

करते हैं—पर अन्दर से आवाज आती है—यह गलत है।

चोर चोरी करता है। मनुष्य असत्य बोलता है, परन्तु अन्दर से ताड़ना पड़ती है, वह ताड़ना देने वाला कौन? जिस काम के साथ आत्मा नहीं होती—वह व्यक्ति उस काम को विश्वास के साथ नहीं कर सकता।

चोर, अत्याचारी, व्यभिचारी, झूठा और पापी अन्दर से डरता रहता है। उसकी आत्मा उसका साथ नहीं देती।

मन को शिक्षा देने वाली अन्दर की शक्ति ही 'आत्मा' है।

आत्मा का विश्वास

आत्मा के लक्षण का विषय चल रहा है। बहुत गम्भीर और टेढ़ा प्रश्न है यह। यदि हमें आत्मा के अस्तित्व का विश्वास हो जाय तो—सांप, बिच्छू, अमीर-गरीब आदि का भय समाप्त हो जाय।

चाहे समाप्त होकर मनुष्य की ग्लानि निकल जाय। दुःख तो यह है कि आप आत्मा का विश्वास ही नहीं करते। आप यह चाहते है कि आत्मा को आंख पर रख कर बता दिया जाय।

मैं मानता हूं कि आप स्पष्ट और साकार वस्तु के दर्शन बिना विश्वास नहीं करते। मैं पूछता हू – मन के अनुभव को आप बता सकते हैं। आप गर्मी के मोसम में मिश्री और बर्फ डाला हुआ पानी पीते हैं। एक आनन्द की अनुभूति होती है कृपया बताइये वह आनन्द क्या है ? करिये वर्णन उसका।

आपने नींबू खाया। आप कहेंगे खट्टा लगा। हम पूछते हैं—खट्टा कैसा होता है। आपने दूध पिया। पूछने पर मीठा कह देंगे। हम पूछते हैं—मीठा कैसा यदि आप कहें कि :"अच्छा है" तो अच्छा तो बहुत होता है।

मैं बिना वायु के उपयोग के अनुभव प्राप्त करना चाहता हूं—पर भाषा इतनी लंगड़ी और अपंग है कि वह उस अनुभव का वर्णन नहीं कर सकती।

मन की अनुभूति चेहरे से, इशारे से या धक्कों से प्रतीत होती है। शब्द तो उस जगह अवक्तव्य कह कर चुप हो जायेंगे।

वाणी का बल विचारो को लिख नहीं सकता।

शरीर से वाणी का बल अधिक है। वाणी से लाखों, करोड़ों मनुष्यों को समझाया या बिगाड़ा जा सकता है। तीर्थंकर, पैगम्बर, अवतार और संसार के बड़े-बड़े क्रांतिकारी वाणी के बल पर ही जनता के हृदय परिवर्तन करते थे।

विचारों का बल और भी अधिक है। इसके लिये इशारे किये जा सकते हैं। पर उन्हें लिखित रूप से या भाषित रूप में सर्वांश में व्यक्त नहीं किया जा सकता।

मन से भी आत्मा का बल अनन्त-अनन्त गुण अधिक हैं। हमें बहुत गहराई में जाना है। आत्मा के लक्षण समझना है।

शास्त्र कारों ने आत्मा के लक्षण करते समय कहा है—

ज्ञान, दर्शन, चरित्र, तप, बलवीर्य और उपयोग आत्मा के लक्षण हैं।

यदि एक शब्द में आत्मा का लक्षण पूछा जाय तो वह—

"उवओगो लक्खणम्।"

उपयोग आत्मा का लक्षण है।

पहला ज्ञान और दूसरा दर्शन लक्षण किया गया है। ज्ञान और दर्शन क्या है ?

दर्शन देखने का नाम है और देखी हुई वस्तु को विशेषरूप से जानने का नाम दर्शन है।

देखना जानने का जानना देखने का पूरक है।

ज्ञान और दर्शन प्रायः एक ही से हैं। पर आरम्भिक अवस्था में पहले दर्शन होता है। बाद में ज्ञान होता है।

पहले वस्तु दर्शन होता है अर्थात वस्तु का सामान्य ज्ञान होता है—फिर क्रमशः अवग्रत ईहा अवाय और धारणा होता है।

इसी प्रकार केवल दर्शन आते केवल ज्ञान एक ही है। केवल दर्शन सामान्य ज्ञान है—और उसी का विशेष स्पष्टीकरण केवल ज्ञान है।

यहां आत्मा के लक्षणों में ज्ञान को सर्वप्रथम स्थान दिया। इसका कारण यह है कि आत्मा का मुख्य गुण ज्ञान ही है। ज्ञान के अभाव में आत्मा अनात्मा ही रहती है।

बहुत मतभेद दर्शनशास्त्र में आते हैं। कुछ लोग ज्ञान को जड़, अध्रुव नष्ट होने वाला आदि मानते हैं। इन सबका विवेचन किया जाना आवश्यक है। विषय बहुत लम्बा है। सभी दर्शन-वादी ज्ञान का आत्मा के साथ भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से मानते हैं। इनमें जैन दृष्टिकोण क्या है—और वह क्यों सत्य है यह आपको बताया जायेगा।

ज्ञान आत्मा के लक्षण की प्रथम सीढ़ी है। यदि प्रथम सीढ़ी ही न रहे तो फिर आगे की बिन्दी किस पर लगेगी ? १ पर बिन्दी लगने पर दशक, शतक आदि बनते जाते हैं।

"एगे जाणइ से सव्वं जाणइ।"

जो एक को जान लेता है वह सबको जान लेता है।

जीव को जान लेने पर इसके विरोधी अजीव का ज्ञान आवश्यक है। फिर जीव के हिताहित के लिये पुण्य, पाप, आश्रुव, संवर, निर्जल, बन्द आदि मोक्ष का ज्ञान क्रमशः आ ही जायेगा।

इस प्रकार आत्मा के लक्षण जान लेने पर हमें सभी तत्वों का ज्ञान हो जायेगा और आत्मा पर विश्वास आ जाने से मोह दूर होकर आप निर्भय बन जायेगे।

ज्ञान और क्रिया

आत्म वाद का विषय आपके सामने चल रहा है। आत्म-चर्या बड़ी गम्भीर है। आज आप बड़ी शान्ति से सुन रहे हैं। इससे विदित होता है कि आपकी जिज्ञासा की भूख जागरत है।

इतने में केवल एक व्यक्ति को ही विश्वास हो गया तो—बहुत कुछ हो गया–समझा जायेगा। आत्म-विश्वास से बड़ा ज्ञान दुनिया में है ही नहीं।

आत्मा के ६ लक्षण कल बताये गये थे। ज्ञान, दर्शन, चरित्र तप, बलवीर्य और उपयोग। इनको यदि संक्षिप्त में हुई तो 'ज्ञान और क्रिया'। ज्ञान और क्रिया से कार्य सिद्धि होती है। आत्मा सिद्धि का भी यही उपाय है।

ज्ञान और दर्शन की बहुत कुछ व्याख्या कल की जा चुकी है।

दर्शन पूर्व ाभास का नाम है। फिर ज्ञान ही कह दिया जाये तो क्या हानि है। दर्शन के ३ अर्थ होते हैं।

१. दर्शन का अर्थ श्रद्धा पूर्वक पूज्य करना है। क्योंकि कोई दर्शन करने जाता है तो केवल मिलकर ही आता।

२–रा दर्शन का अर्थ प्रतीति या तत्वार्थ श्रद्धा है।

३–रा दर्शन का अर्थ तत्वार्थों का विवेचन करके आत्म

दर्णन करना है।

साधारणतया व्याकरण समान अर्थ दर्शन यानि देखना है।

यहां दर्शन का अर्थ ज्ञान का सहायक सामान्य प्रसीति को दर्शन कहा गया है।

अब एक प्रश्न और उपस्थित होता है। वह यह कि रमन स्वप्रकाशक या नहीं।

कुछ लोगों का मत है कि ज्ञान जड़ है। वह स्वय अपने आपको नहीं जानता। ज्ञान रहित आत्मा ही मोक्ष को प्राप्त होता है। आत्मा ज्ञान रहित होता है···तब वह कूटस्था हो जाता है। यही ज्ञान को जड सिद्ध करता है।

ज्ञान करने में ३ बातों की जरूरत होती है। ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय।

ज्ञाता ज्ञानवान आत्मा को कहते हैं। ज्ञान आत्मा का करण है—जिससे ज्ञान किया जाता है ज्ञेय वह पदार्थ है, जिसका ज्ञान किया जाता है। तीनों भिन्न हैं। जैसे श्रोता वक्ता और उपदेश तीनो भिन्न होते हैं। जैसे कुम्भकार चाक और मिट्टी भिन्न होते हैं···इसी प्रकार आत्मा ज्ञान और क्षेय भी भिन्न हैं।

तीनों के एक हो जाने मे क्रिया का अभाव हो जायेगा। भोजन खाने वाला, बनाने वाला और भोजन भिन्न २ हैं। एक समय में दो क्रिया नहीं होंगी। इसी प्रकार समय ज्ञान और क्षेय भी भिन्न-भिन्न हैं।

ज्ञान आत्मा का स्वरूप है। तो फिर उनका सम्बन्ध कैसे? ज्ञान क्षेय मय हो जाता है। तो क्या आत्मा वस्तुमय हो जाता है।

यह एक आशंका है जो ज्ञान अपने आपको नहीं जानता!

इसमें यही कहा जा सकता है कि दिया तले अन्धेरा !

आज बहुत कुछ यही हो रहा है। हमारे छात्र यह जानते हैं कि जापान, चीन, ब्रह्मा, लंका, अमेरिका, जर्मन और इंगलैण्ड आदि कहां हैं। वहां की जलवायु, जनसंख्या, आदि सब कुछ बता देंगे।

पर, यदि उनसे पूछा जाये कि तुम कौन हो ? तो वे चक्कर में पड़ जायेंगे। उन्हें नहीं मालूम कि उनके अन्दर के चीन जापान अमेरिका और जर्मन क्या कर रहे हैं। उनके इस पुतले में कौन बोल रहा है। उनके अन्दर कौन-कौन तत्व हैं ? खैर, ।

अपन आज ज्ञान के स्वपर प्रकाशक पर विचार कर रहे हैं। आप जानते हैं—जैसे दीपक स्वयं प्रकाशित होकर ही पर प्रकाशन करता है—इसी प्रकार ज्ञान स्वपर प्रकाशक है।

ज्ञान बिना क्रिया के लंगडा है। और क्रिया बिना ज्ञान के अंधी है। दोनों का परस्पर सहयोग आवश्यक है।

एक धनिक सेठ बड़ा कंजूस था। धनवान कंजूस की या धनवान उदार की ही कहानी बना करती है।

अधकचरे आदमी को कोई पूछता ही नहीं।

उस सेठ ने एक सुन्दर बाग लगाया। इस उद्देश्य से कि उसके द्वारा अच्छी आय हो सकेगी। वह बड़ा चतुर था उसने सोचा यदि माली बाग को खा गये तो मुनाफा व्यर्थ जायेगा।

इसलिये ऐसे दो माली रखने का निश्चय किया जिसमें एक अन्धा था—दूसरा पंगु।

पंगु देखकर बता सके कि बाग के अमुक भाग में हानि हो रही है—अन्धा बताये हुये संकेत पर लाठी फिराता हुआ जाये और उस जानवर को उड़ा दे या भगा दे।

भोजन के लिये उनको ४ रोटी चटनी के साथ सेठ के घर से मिलने लगी।

पंगु माली फलों के रंग-रूप का वर्णन करता तो अन्धे के मुंह में भी पानी आ जाता। पर, बिचारे क्या करते लाचार थे। सेठ को हजारों रूपये का सालाना लाभ हो गया पर, उन्होंने माली लोगों को चाट न लग जाये इसलिये एक फल भी नहीं चखाया।

जिनका एक अंग बेकार हो जाता है—उनकी वह शक्ति दूसरे अंग में समा जाती है। पंगु का दिमाग बड़ा तेज था। उसने अन्धे से कहा—

'भाई बाग में फल बडे सुन्दर-सुन्दर हैं। यदि तू एक बात मानले तो अपने को मजा आ जाये।'

अन्धा बोला—'तेरी आशा में ही तो सारे बाग की रखवाली करता हूं—कह क्या चाहता है तू ?

'तू मुझे अपने कन्धे पर बिठा' पंगु ने कहा—'और मैं कहूं उधर चल, अपन फल तोड़ कर खायेंगे और जीवन का मजा लेंगे।'

योजना बनी। दोनो ने मिल कर फलों का आनंद लिया।

दुनियां में किसी बात की कमी नहीं। लोग संप्रदायें बनाते हैं—तो उनको तोड़ने वाले भी मौजूद हैं। लोग कानून बनाते हैं–तो लोग उनको तोड़ने वाले भी पैदा हो जाते हैं। दुनियां में अच्छे बुरे सब हैं आप जैसे व्यक्ति देखना चाहो दुनियां में मिल जायेंगे। दुनियां में गुण्डों की कमी नहीं तो महात्माओं का भी बीज लुप्त नहीं हुआ।

ज्ञान आंखों दो–चारित्र और श्रद्धा पैर हैं। दोनों के संयोग

से ही मोक्ष की सिद्धि है।

केवल ज्ञान काम नहीं चलेगा। उसके साथ क्रिया की भीं आवश्यकता है।

कुने लोग केवल ज्ञान ही ज्ञान मुक्ति की आशा करते हैं–वे मूल पर हैं। जो केवल क्रिया काण्ड को आंख बन्द करके करते रहने में सिद्धि मानते हैं––यह उसकी भी भूल है।

केवल ज्ञानवादी या क्रियावादी की मुक्ति नहीं है। पर ज्ञान क्रिया क्यों मोक्ष ?

मौत या वरदान

आज मुझे मौत पर मनन का विषय पूरा करना है। जिन्दगी की बातें हम सदा करते आये हैं। आज मुझे मौत की बात करने दीजिये।

मृत्यु क्या है ? मृत्यु ने लाखों झोड़ों और अरबों नहीं अन्नत–अन्नत प्राणियों को निगला है। सारी सृष्टि का परिवर्तन मृत्यु के माध्यम से होता है। यदि मृत्यु न होती तो जीवन के महत्व को आप आंकते किस माप दण्ड से ?

मृत्यु आती है। विश्व के प्रत्येक प्राणी को आयेगी। इसमें कोई संदेह नहीं परन्तु जो मृत्यु का सवरण करता है···वह वीर पुरुष कहलाता है।

कहा जाता है––कल गोवा में २७ व्यक्ति शहीद हुये। उनकी

जिन्दगी देश के काम आई। उन्होंने स्वयं मृत्यु का आलिंगन किया। आजादी के लिये मौत को स्वीकार किया उन्होंने। आजाद होने वालों को मौत मिला करती है।

मृत्यु एक पुल है। इसे पार कर जायं फिर आजादी ही आजादी है। उन २७ सपूतों के लिये आज सारे भारत वर्ष में स्ट्राइक हो गई। सम्पूर्ण भारत की उनके लिये सहानुभूति क्रियेट हो गई। उनके लिये सारे भारत के सिर झुक गये। सारे के सारे अखबार आज उनकी ही चर्चा करेंगे।

क्या कारण है ? उन्होंने अपना कर्त्तव्य पालन किया। कर्त्तव्य पालन की अच्छाई में विश्वास सारा विश्व प्रकट करता है। पर कर्त्तव्य का पालन करने वाले विरलेती होते हैं।

वैसे तो लाखों लोग मरते रहते हैं—छुरे बाजी से भी हजारों अपने जीवन से हाथ धोते हैं। पर, उनके लिये तुम चार आंसू भी नहीं बहाते। अकेले बम्बई में दादर का श्मशान घाट दिन भर चलता रहता है। हिन्दुओं की तरह मुसलमानों के कब्रिस्तान ईसाई, पारसी, आदि के भी मरघट होते हैं। कितने व्यक्ति मरते है—प्रतिदिन ? परन्तु उनके प्रति सहानुभूति नहीं।

यदि उन २७ के लिये अन्तिम संस्कार के सामान की जरूरत हो तो उस सामान खरीदने में हर व्यक्ति अपना योग देगा। प्रत्येक उनके प्रति सहानुभूति दिखा रहे हैं।

यह सहानुभूति क्या हुई ? उन्होंने क्या बड़ी बात कर दी ?

उनके सहानुभूति का कारण है कि वे मारे गये। और उन्होंने अपने प्राण किसी शुभ उद्देश्य के लिये दिये। स्वार्थ के लिये नहीं।

ससार में सबसे बड़ा भय यदि कोई है—तो वह मौत का।

मौत क्या है, आज मैं यह कहने जा रहा हूं।

मुझे कहने दीजिये कि मनुष्य को मौत आने वाली है। इस का तो निश्चय है – पर, मोत पर विश्वास नहीं।

क्या आस्तिक क्या नास्तिक, डाक्टर और वैद्य, वकील और वैज्ञानिक, सोसलिस्ट और कम्युनिस्ट चाहे किसी भी विचारधारा के हों—एक दूसरे की मान्यता पर चाहे वे एकमात्र न भी हों—चाहे वे परमात्मा और आत्मा की सत्ता न भी स्वीकार करते हों—पर एक दिन मरना है···इस बात में किसी के भी दो मन नहीं हैं। सब लोग एक ही स्वर से मौत को स्वीकार करते हैं···।

एक सोने की डली यदि किसी नाले में पड़ी हो–जो आसानी से निकाली जा सकती हो···तो उसे कोई छोड़ने वाला नहीं। पर, यदि वह किसी ऐसे नदी नद या समुद्र में गिर जाय—जिसमें मगर मच्छ का भय हो···तो वह उसे नहीं निकालेगा। क्यों ?

इसलिये कि उसमें मौत का भय है। यदि कोई कहे कि भाई तुम मेरे लिये उपवास कर लो···मैं ठीक हो जाऊंगा··· तो सम्भव है तुम राजी हो जाओ। पर यदि कोई कहे कि तुम मेरे स्वस्थ होने के लिये कलेजा, फेफड़ा या हृदय दे दो। तो तुम बिल्कुल इन्कार कर दोगे···चाहे मांगने वाला तुम्हारा सगा बाप या बेटा ही क्यों न हो ? क्यों ? इसलिये कि उसमें तुम्हें मृत्यु का भय है। जीवन देकर जीव बचाना कोई आसान काम नहीं।

यदि आपको मालूम हो जाय कि संखिया खाने से प्राण उड़ जायेंगे तो आप उसे हर्गिज नहीं खायेंगे। संसार में चोर, दुःख दरिद्रता आदि से जो भय है···उन सबके पीछे मौत का भय

अनार्तित है। तुमने मान लिया कि मर जायेंगे तो फिर क्या होगा ।

संसार के सब धर्मों का मूल है मौत का भय। यदि मौत का भय बाद कर दिया जाय तो फिर संसार में भय जैसी वस्तु कोई रहे ही नहीं ।

यदि आपको विश्वास हो जाय कि सांप के काटने पर भी विष नहीं चढ़ेगा तो क्या आप फिर सांप का भय करेंगे ? फिर तो आप सांप को खिलौना बना कर गले में लटका लेंगे ।

मुझे एक लेखक की पंक्तियां याद आ रही हैं। बतला सकते है आप मृत्यु और नींद में कुछ फर्क है क्या ? नींद के बाद आपको उठने का विश्वास है···पर मौत के बाद आपको उठने का विश्वास नहीं। यही कारण है कि नींद के लिये तो आप कभी–कभी दवा भी ले लेते हैं। पर मौत के लिये ?

मौत भी एक नींद है। याद रखिये इस नींद के बाद भी आप जागेंगे। आप की शक्ति का ह्रास हो गया है। शरीर जर्जर हो गया है––इसका परिवर्तन आवश्यक है। इसीलिये मौत भी आवश्यक है। यह विश्वास आपको दुनिया की कोई दौलत और वैज्ञानिक नहीं दिला सकते पर, यह विश्वास आपको धर्म दिलाता है ! मौत का इलाज किसी के पास नहीं···धर्म के पास है ।

भौतिक वादी मौत का उत्तर नहीं दे सकते। धर्म कहता है—मौत कुछ नहीं···केवल एक परिवर्तन है। मृत्यु में जन्म का विश्वास है। यह उसकी अनिवार्यता है। यह समझ धर्म से आती है। इन्हें यह निश्चय हो कि मरने पर फिर नहीं जायेंगे या सर्वथा नष्ट हो जायेंगे तो कोई मरने जायेगा ?

राष्ट्र पर मरना एक शुभ काम है। यह एक विचारधारा

है। जाने वाले हिन्दुस्तान और गोवा के मित्र हैं। पर पुर्तगालियों के तो शत्रु हुये···पर, यह भारतीयों का राष्ट्र धर्म है। जिस भूमि की मट्टी से पले और बड़े हुए। उसके लिये भी तुम्हारा कोई कर्त्तव्य होता है।

भाषा का जन बल इतना है कि वह सारे यूरोप पर हावी हो सकता है। तोप और तलवार का बल ज्यादा ठीक नहीं हो सकता।

जिन्दगी का न्योछावर करना यदि तुम्हें नहीं आता तो तुम आजादी के महत्व को भी नहीं आंक सकते। धर्म में जो आज तक तुम्हें तेजस्वीय दिखाई दे रही है उसके पीछे एक दो हजारों नहीं···लाखों करोड़ों बलिदान हैं। उन्होंने इसे अपने खून से सींचा है! तभी इसका प्रभाव और तेज है।

बिना परिश्रम से मिली वस्तु का मूल्य कुछ भी नहीं होता।

मां बाप जब बच्चे के वस्त्र जीर्ण–शीर्ण और मैले कुचैले देखते हैं तो उसे बदल देते हैं। आपको स्वयं जब यह विश्वास हो जाय कि अच्छे वस्त्र आभूषण पहनने को मिलने वाले हैं तो चीथड़े···या मैले कुचैले कपड़ बदल लेते हैं। ठीक इसी प्रकार शरीर को बदलना भी मौत है।

मनुष्य को निर्भय बनने के लिये केवल विचार ही बदलना है···।

महात्मा कबीर आनन्द धन ने क्या किया। केवल विचार ही तो बदले वे कहते हैं :—

राम मरे तो में मरूं,
मेरी मरे बलाय।
सच्चे गुरू का बालका,
मरे न मारा जाय।

और घनानन्द ने गर्जना की,

अब हम अमर भये न मरेंगे।

कबीर को जब सम्राट ने पत्थर बांध कर नदी में डाला तो वह पत्थर सहित तिरने लगे। गोया नाव पर ही सवार हो। माना कि उनको प्राणायाम का साधन था। और जब हाथी के सामने कुचलने को डाल दिया तो हाथी ने उठा कर उनको सिर पर बिठा लिया।

क्यों···? इस लिये कि उनको आत्मा की अमरता पर विश्वास था।

आत्मा अमर है। पदार्थों की पर्याय अनित्य है। मरेगा कौन ? नष्ट होने वाली वस्तु नष्ट होती है। उनके मन में मौत कपड़े का सा परिवर्तन है।

मौत को आप विध्वंसक मानते हो यही भूल है। मौत सर्जक है। वह निर्माण करती है। यही कारण है कि मौत अभिशाप नहीं···वरदान है। आप इस आत्मा को प्राप्त कर लो···अमर हो जाओगे।

ठाणांग सूत्र के ७ वें ठोण में मृत्यु के सात कारण बताये हैं, उनमें एक कारण बताया है :—

रस का अधिक सेवन

जो व्यक्ति रस का अधिक मात्रा में उपभोग कराता है, वह जल्दी मरता है।

रस क्या है ? घी, दूध, तेल, मक्खन, शहद, गुड, शकर और नाना प्रकार की मिठाई रस है।

इनकी अधिकता से जठराग्नि मंद होकर पाचक रसों का ह्रास हो जाता है। परिणाम स्वरूप श्वास पर दबाव ज्यादा पड़ता है। और श्वांस गति बढ़कर वह प्राणों का नाश करता है। इसी से आयु क्षय होकर मौत के निकट पहुँचता है।

जो लोग मछली मांस आदि का सेवन करते है···उनकी भी यही दशा होती है।

इसी प्रकार जिन-जिन कार्यों में श्वांसों का वेग बढ़ता है उन काम क्रोध आदि से प्राण शक्ति का अपव्यय होकर मृत्यु का मेहमान बनना पड़ता है।

तुम लोग समझते हो—खोवा मलाई आदि अधिक खाने से अधिक ताकत आवेगी···पर यह सब भ्रम है। गलत धारणा है। मौत नजदीक आती है!

मौत का आना बुरा नहीं पर अकारण मौत को निमन्त्रण भी बुरा ही है।

हम अपनी खुशी से न आये···न अपनी खुशी से जाते हैं। जो आने वाली है···वह आवे इसमें हमारा कोई विरोध न हो न चाह हो।

जिन्दगी मौत को लेकर आई है। इसमें तुम्हें घबराहट क्यों। अच्छा मानलो तुम्हें मालूम है कि मौत निश्चित रूप से आवेगी···तो फिर डर किस बात का ? अथवा आपको यह पूरा विश्वास है कि हम नहीं मरेंगें···तो फिर डरने की क्या जरूरत ?

यदि तुम संसार में कुछ कर जाना चाहते हो तो करो। जिसकी जिन्दगी शानदार होती है···उसकी मौत भी शानदार होती है। कुत्ते की न जिन्दगी शानदार है न मौत ? तुम

महात्मा गांधी की तरह जीयो। और महात्मा गांधी की तरह मरो।

उन्होंने जीकर देश को आजाद कर दिया और मर कर विश्व को शांति का संदेश दे दिया। यदि यों कहा जाय कि मर कर उन्होंने और भी बड़ा काम किया कि मर कर उन्होंने विश्व को आजाद कर दिया। बिश्व को भय मृत्यु होने का मंत्र दे दिया—जिसका फूंकने वाला नेहरू है—तो कोई अतिश्योक्ति न होगी।

मौत और जिन्दगी शान की हो बेकारी की जिन्दगी और मौत बेकार है।

इसी लिये एक शायर ने कहा है—

ऐ मरने वाले इस तरह मर, और ऐ जीने वाले इस तरह जी कि तेरा मरना और जीना मिसाल बन जाये।

जीते रहो दमकते रहो।
मर जाओ, रोशनी छोड़ जाओ॥

तीर्थंकर जीते जो तीर्थ का प्रवर्तन कर गये—मर गये··· करोड़ों अरबों महा मानवों को रास्ता बता गये। उनके बताये पथ पर चल कर वे अमर हो गये।

अथवा मुझे महा कवि अकबर की वह शायरी कहने दीजिये कि—

कुछ काम कीजिये,
कुछ काम का अन्जाम लीजिये।
वरना हजरते अकबर कह गये,
मुर्दों के साथ आराम कीजिये॥

जिन्दगी केवल बस्त्रों के परिवर्तन की तरह मौत से दूसरी जिन्दगी में पहुंचती है।

जिन्दगी और मौत एक सिक्के की दो बाजू हैं। एक के भी

अभाव में वह सिक्का चलन के बाहर का हो जाता है।

तुम्हें मौत के भय की आवश्यकता नहीं। तुमने जिन्दगी को अपने अधिकार की वस्तु मान ली—इसी अहंकार के कारण तुम को मौत का भय है।

तुम अपने आपको जीवन का शासक समझ रहे हो। शासन नहीं चलता तो बुरा लगता है। इसी तरह हमें दुःखी होना पड़ रहा है। इस अहंकार को दूर करके आत्मा की अमरता और मौत की अनिवार्यता पर विश्वास करो। मौत को छोड़ कर प्रेम की ओर आओ। तुम मौत को मौत नहीं वरदान समझने लग जाओगे। बल्कि तुम अमर हो जाओगे।

मौत पर मनन

संतों ने संसार के तमाम विषयों का विवेचन किया है। उसमें सबसे अधिक विवेचन मौत पर किया है। मेरे मन में भी विचार आया कि हम सुरक्षा की बात करते हैं···आत्मा के अस्तित्व के गंभीरतम रहस्य का उद्घाटन करने की बात करते हैं—नीति और दर्शन शास्त्र की चर्चा करते हैं। जिन्दगी भर करेंगे, आज क्यों न मौत का विचार कर लें। आत्म वाद की सिद्धि में मौत का सबसे बड़ा सहारा है।

यदि मौत न होती तो कल्पना करो उस संसार की···इस संसार की क्या दशा होती। यदि मृत्यु बन्द कर दी जाय, क्या

आप शांति से जी सकेंगे ? अनंत-अनंत जीव पैदा होते हैं। मौत उन पर अंकुश लगाती है।

मृत्यु जीवन का आदर करना सिखाती है। मृत्यु जीवन का उपहार है।

इस जीवन की कीमत किसने बनाई। मौत ने, हमने विचार किया। तत्व चिंतकों ने सोचा। वैज्ञानिकों ने अन्वेषण किया कि आखिर ये मौत क्या चीज है।

माना कि मृत्यु जीवन का अन्त है, पर मृत्यु दुखदायी क्यों? मौत पर कहने के पूर्व मौत की अनिवार्यता पर कहना ज्यादा उचित होगा।

मुझे उस बूढ़ी मां की बात याद आ गई, जिसका दीपक बुझ चुका था। जिसका लखते जिगर इस संसार को छोड़ चुका था। जिसकी जिन्दगी की लाठी टूट गई थी, उसका बच्चा मर चुका था।

वह बावली हो गई। वह मोहांध होकर कहने लगी—रूठ गया लाल ! बोलना नहीं, क्यों ? क्या चाहना है बेटा।

बेटा बीमार हो गया। वह वैद्य की शरण में जाती है··· प्रार्थना करती है मेरा बेटा बेहोश हो गया है···इसे दवा दो मैं तुम्हारी आजीवन गुलामी करूंगी।

वैद्य ने कहा—मां तेरा लाल सदा के लिये सो गया। वह मर गया। पर मां कब मानने वाली थी। उसने कहा आग लगे तेरे दवाखाने को। जो तू मेरे लाल को होश में न ला सका तो क्यों दवाखाना चलाता है। तू न सही तेरे भाई और भी हैं।

वह औषधालयों में गई।पर इसका समाधान वहां नहीं था। निराश तो हो गई वह बावली। एक ने कहा भगवान बुद्ध पहुंचे हुये पुरुष हैं। वे तुम्हारा संकट दूर कर सकते हैं। तू वहां जा ! दुःख से व्याकुल क्या नहीं करता। वह गई। अपने पुत्र को बुद्ध

के सामने पट कर–कहने लगी–भगवान् ! आप मेरे पुत्र को जिन्दा कर दो। होश में ला दो।

करुणा के सागर बुद्ध दुःख कातर थे। उनका हृदय रो उठा। उसने उस दुखिया का दुख दूर करने का उपाय सोचा। बोले—'मां, मैं इसे होंश में ला सकता हूं। पर एक शर्त है।'

'वह क्या है भगवान !' बुढ़िया बोली। मैं आसमान से तारे तोड़ कर ला सकती हूं।'

'तो मां जी मैं एक नुस्खा देता हूं–तू उसकी दवायें ले आ।'

कहिये भगवान। मैं जाने को तैयार हूं।

'कुछ दाने सफेद सरसों के ला। देखना उस घर से लाना–जिस घर में कभी मौत न हुई हो।'

मौत की अनिवार्याय बृद्ध जानते थे। फिर यह नाटक क्यों रचा ? शंका उपस्थित होती है।

उत्तर यह है कि जैसा पात्र होता है–उसको उसी की भाषा में समझाया जाता है यह असत्य भी नहीं है। भगवान महावीर जानते थे कि महाराजा श्रेणिक की नरक गति नहीं नहीं चल सकती है। फिर भीं राजा श्रेणिक ने कहा—

'भगवान में आपका याद आते मेरी नर्क गति नहीं उसके दुःख की बात है। आप इसे तलने के उपाय बताइये। उसे समझाने के लिये भगवान ने ४ उपाय बताये–जिसका कथानक शस्त्र प्रसिद्ध है।

यह भगवान ने क्योंकि। केवल समझाने के लिये।

आप कहोगे हृदय पल्टो। पर जब एक गाय आपकी दुकान पर रखे हुये अनाज को खाने लगे–तब क्या आप हृदय पलटने का उपदेश देंगे। कहो उसे समझाने बैठेंगे। या उसे सांसारिक मामला कह कर छोड़ देंगे।

एक बच्चा अबोध है–वह अफीम की गोली खा रहा है। गोली छिनने पर रोता है–आप क्या करेंगे वहां। उसे हृदय पलटने का उपदेश देंगे क्या उससे गोली छीनना उचित है।

अहिंसा निग्रह अनुग्रहात्मक है । प्रेम से मुनि शिष्य पर कठोर अनुशासन करे तो वह हिंसा नही। अहिंसा की सहायक है।

आचार्य कुन्दकुन्द की बात मुझे याद आ गई।

उनसे प्रश्न किया गया—भगवान किस भाषा में उत्तर देना चाहिये ?

तो उत्तर मिला—जिस भाषा में सुनने वाला समझ सके।

यदि तुम लोगों को बोलना ही आ जाय तो विवाद न हो। जबान के कुछ शब्द सारे विश्व में तहलका मचा सकते हैं।

पंडित नेहरु क्या देता है। भारत के पास देने को है ही क्या ? वे यदि बडबड़ाते होते तो दुनिया में उनका क्या महत्व होता। आज दुनिया के राष्ट्र नेहरु के भाषण पर विचार करने के लिये कमीटियां बनाकर विचार करते हैं। सारा विश्व देखता है कि नेहरू के भाषण में क्या संकेत है। और भविष्य का क्या मार्ग दर्शन है। ये केवल नेहरु के लिये ही क्यों ?

उन्होंने भाषण की शक्ति को पहचाना है। वाणी पर संयम की लगाम लगाई है।

बुद्ध ने बुढ़िया से ज्यों सरसों के दाने मंगाये--वह कोई असत्य भाषण नही पर समझाने का ढंग है।

बुढ़िया चल दी। एक बार घर गई। कहा—बहन मुझे कुछ सरसों के दाने चाहिये।

जिसके सीने में प्रेम हो–ऐसा कौन व्यक्ति है--जो मदद को तैयार न हो सरसों के दाने आये।

बाई ने बुड्ढी से कहा—'लो, मां।'

बहन ! एक शर्त है–भगवान बुद्ध की।

—यदि तुम्हारे घर में कभी किसी की मौत न हुई हो तो ही तुम्हारे घर के दाने काम में ग्रा सकेंगे।'

वह बाई जो ग्रपने परिवार वियोग दुःख से संतृप्त थी–उस का पुराना रंज ताजा हो गया। रोती हुई बोली–मेरे घर में तो मौत ने कई बार ग्राक्रमण किया है।

वह मां दूसरे घर–ग्रौर फिर तीसरे घर गई। यह क्या सबके घर में मौत ने दावा किया। सब घर भटकी कोई घर ऐसा नहीं मिला जहां से वह सफेद सरसों के दाने भी ले सके।

बुद्ध के पास वापस ग्राई है। रास्ते में उसे ग्रपनी ग्रज्ञानता पर पश्चाताप होने लगा–ग्ररे सारे संसार में ऐसा कोई मनुष्य नहीं जिसके घर में कभी कोई मौत न हुई हो। मैंने नाहक जाकर सब दुःख पुफोड़े फोड़े। वस्तुतः मेरा काल भी मर गया है।

वह बुद्ध के निकट ग्रायी। बुद्ध ने पूछा लाई मां सरसों?

वृद्धा ने कहा—हां भगवान ! मेरा बच्चा ग्रच्छा हो गया। मौत की ग्रनिवार्यता मैं समझ गयी।

मौत ग्रनिवार्य है। मरने वाला पीछे वालों के लिये मौत छोड़ जाता है। संतान के प्रति प्रेम किस को नहीं होता। परसों ग्रखबार में एक कहानी निकली थी–उसका शीर्षक था—

"मेंडक ने सांप मारा"

सांप ने मेंढ़क के बच्चे को पकड़ लिया बड़े मेंढ़क को पता चला। उसने सांप के मुंह को पकड़ लिया। सांप तड़फड़ाया–बच्चा छूट गया–पर मेंढ़क ने साप को नहीं छोड़ा, वह मर गया।

मृगी को आप जानते हैं। और वह जंगल की हरिणी कितना भयभीत पशु। जब उसके बच्चे को शेर पकड़ लेता है। तो वह शेर से भिड़ जाती है। परिणाम में चाहे उसे भी अपने जीवन से हाथ धोना पड़े।

प्रेम किसी आधार से आता है। प्रेम आने के दो आधार हैं– १. खून के आधार से २. विचार के आधार से। जब विचार और खून का क्रम टूटता है–आदमी तड़फड़ा उठता है।

मौत का कुंआ कभी भरेगा नहीं। मौत की कहानी कह रहा हूं, मौत क्या है ?

उपनिषद की बात कह रहा हूं —

नचिकेता के पिता ने यज्ञ किया। तोहा अध्वनि सबको काम सोंपा गया। नचिकेता केवल ८ वर्ष का–उसे विस्मय हो रहा था कि आखिर उसे कोई काम क्यों नहीं सोंपा जाय।

वह बार बार पिताजी से कहता मुझे भी कोई काम दीजिये। एक बार टाला, दो बार टाला, आखिर पिता को कार्य में व्यवधान होने से क्रोध आ गया और कह दिया–तू मौत के पास चला जा ?

आज्ञाकारी पुत्र तत्परं हो गया और कहा–मुझे भेज दीजिये मौत के पास।

यज्ञ जैसे महान कार्य के विघ्न रूप पुत्र को नचिकेता के पिता ने मौत के पास भेज दिया। मैं उपनिषद की कहानी कह

रहा हूं ।

मौत क्या थी ! यम के पास नचिकेता पहुंचा यम कहीं गया हुआ था–नचिकेता यम की इन्तजारी में भूखा प्यासा दिन तक पड़ा रहा । ३ दिन का अनशन हो गया । यम आया–उसने देखा उसके घर तीन दिन का भूखा ब्राह्मण बटु अनशन करके करके पड़ा है । वह घबराया । ब्रह्मताया के घातक प यम ने कहा—

मुझ से रुष्ट न होना ब्राह्मण बटु ! मेरा कोई अपराध नहीं हैं । मैं यहां नहीं था । मांगो तुम मुझ से क्या चाहते हो– मैं तुम्हारी सेवा करने को तैयार हूं ।

नचिकेता ने तीन प्रश्न किये । दो का जिक्र यहां अप्रासंगिक होने से तीसरे प्रश्न का वर्णन आपको सुनाया जाता है ।

नचिकेता बोला—'मैं मौत देखना चाहता हूं ।'

मौत देने वाला यम दिङ्मूढ़ हो गया । उसने कहा किसे मौत कहा जाय यदि मैं जल को मौत कहूं तो–जल जगत का जीवन है । यदि अग्नि को मौत कहूं–तो वह भी जीवन दायो है । हवा को मौत कैसे कहा जाय उसके बिना एक क्षण भी नहीं जी सकते ।

आखिर नचिकेता को वापिस भेजना पड़ा ।

मौत का वास्तविक अनुभव करके वर्णन करना कठिन है । बड़े-२ वैज्ञानिक खुद जहर की पुड़िया खाकर लेट गये । पैंसिल हाथ में लेकर उसके आन्तरिक अनुभव को लिखने लगे । पर अन्त में जब मौत का झटका आया–तब वे उसका वर्णन नहीं लिख सके ।

प्रश्न खड़ा ही रह गया–मौत क्या है ।

तीर्थ कर देव को जन्मत अवधि ज्ञान होताहै । वे देव अवस्था में भी अवधि ज्ञानी थे । पर जब वे देव लोक से भवेत हैं । उस क्षनिक समय के लिये उनका अवधि ज्ञान नहीं रहा

था ।

कोई भी व्यक्ति मौत के स्वरूप को नहीं बता सकता । मौत मौत की क्या रिड़िग है । क्या कंप कंपी है । नहीं कह सकते ।

पर, हम मौत को छोड़ने वाले नहीं हैं । मृत्यु क्या है—

कुछ कहते हैं-दो तत्व हैं ? जड़ और चेतन । दोनों पृथक हो जाते हैं–मृत्यु हो जाती है । ठीक है । ठीक है आपको आत्मा के जानने की जिज्ञासा होनी ही चाहिये ऐसे पवित्र स्थान में जहां संतों का समागम हो–तुम्हें आत्मा शान्ति न मिले तो फिर कहां मिलेगी ।

यहां साम्प्रदायिकता संकीर्णता आदि से ऊपर उठ कर जिज्ञासु बनो ।

मौत की बात चल रही है । भगवान महावीर के पास इन्द्र पंचजाल है । प्रार्थना करता है–भगवन् यदि आप अपनी आयु की दो घड़ी बढ़ायें–तो मता भस्म ग्रत लगने वाला है–वह न रुके और संघ पर संकट २००० वर्ष के लिये आने वला है–या आवे ।

तब भगवान ने क्या उत्तर दिया— मालूम है आपको ?

उन्होंने फरमाया मैं एक समय की आयु घटा बढ़ा नहीं सकता ।'

विश्व का सबसे महान शक्ति शाली पुरुष अपनी बढ़ाने में असमर्थ है ।

फिर प्रश्न होता है–ये आकस्मिक घटनायें क्या हैं एक्सी-डेन्ट क्या चीज है ?

आपका ध्यान टाईम पर जा रहा है । आयु टाईम का बंधा हुआ नहीं है आयु का माप श्वोसोच्छ्वास के द्वारा किया जाता है ।

जब व्यक्ति व्याभिचार में रत होता है । हाजमें की खराबी होती है । जितनी मात्रा में क्रोध काम गर्हा आदि की प्रबलता

होती है उसने तो श्वासोच्छ्वास बढ़ जाते हैं। और वे अकाल मृत्यु को प्राप्त करते हैं।

चटपटे खाने खाइये और सात्विक भोजन करिये–श्वासों में अन्तर होजायेगा।

नक्शा खींच लो अपने जीवन का चित्र उपस्थित हो जायेगा आपका जीवन और मृत्यु प्रत्यक्ष हो जायेंगे।

जितने श्वास लम्बे लेंगे जीवन उतना ही विशाल होगा। और श्वास जितने छोटे होंगे—मृत्यु उतनी ही निकट होगी।

फिर प्रश्न होता है। १० वर्ष की अवस्था में तलवार के झटके से कट गया—और मौत हो गई। यह क्या है ?

आपने एंजिन देखा है। उसमें भाप की एक शक्ति है। उसके नियत्रण द्वारा इंजिन चलता है। यदि हम चाहें तो उस भाप को एकदम भी निकाल सकते हैं। और सुन्दर व्यवस्था से रखा जाये तो वह मीलों रेल को लेजा सकता है।

ठीक इसी प्रकार हमारे श्वास और उच्छ्वास नियमित रहता है तो आयु का काए बढ़ जाता है अन्यथा वह भाप की तरह एक साथ भी समाप्त हो सकते हैं।

इनमें कुछ पुराने पूर्व जन्म के संस्कार काम करते हैं। कुछ इस जन्म के संस्कार काम करते है। हमें इन सब पर मनन करना है। मौत का मनन करने के लिये हमें अधिक समय की जरूरत है।

अलग-अलग दार्शनिकों के अलग-अलग दृष्टांग आपके सामने आना है।

आत्मा कहां से निकलती है, कहां जाती है, क्यों जाती है, कैसे जाती है आदि सब पतक्षुओं पर विचार करना है।

मौत के सम्बन्ध में मनुष्यों की क्या २ कल्पनाये है। कुछ

लोग शमशान की राख को बिछाकर उसमें स्वप्न रेखा चित्र पर से गति का कथन करते हैं।

पारसी लोग मुर्दे को रखकर बैठ जाते हैं।

उस मुर्दे को खाने के लिये कौवा, चीए, गीद्ध कौन आता है उसी पर से उसकी गति का विचार करते हैं। आन्दर कई बातों पर अपना विचार करेंगे।

आज तो आप 'मौत के मनन' में यह निश्चय कर लीजिये कि मौत अनिवार्य है और आवश्यक भी। मौत न होती तो जीवन का महत्व न होता। मौत न होती तो आपका जीना और रहना हराम हो जाता।

इन्द्रिय मन और मनोविज्ञान

आज का मानव मन, मौत, काम और क्रोध से आबद्ध है ये जीवन के प्रकाश में रूकावट है। काम क्रोध आदि मन से उद्भूत होते हैं, मन का आधार है इन्द्रियां। आज मुझे इन्द्रिया मन और मनोविज्ञान पर बोलना है।

आज के मनोवैज्ञानिकों ने इन्द्रिय और मन का विश्लेषण करने वाले मनोविज्ञान के संबन्ध में बहुत कुछ लिखा है। किन्तु हमारे पूर्वाचार्यों ने बिना किसी साधन और सुविधा के आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व मन, इन्द्रिया और मनोविज्ञान का जो विवे-

चन किया है उसे देखकरे आज के वैज्ञानिक दांतों तले अंगुलियां देंगे। इसमें रंचमाम भी अतिशयोद्ध नहीं है।

मैं दोनों प्रकार के मनोविज्ञान का विद्यार्थी रहा हूं। मैंने दोनों मार्क्सिस और जैन मनोविज्ञान के अध्ययन का श्रम किया है। और मैं जिस परिणाम पर पहुंचा हूं उसके आधार से दृढ़ता पूर्वक कह सकता हूं कि आज के मनोवैज्ञानिकों को उस मनोविज्ञान तक पहुंचने में अभी वर्षों तपस्या करनी होगी।

मनुष्य के शरीर को अगोयन का नाम दिया गया है। जब मनुष्य के आत्मा और शरीर का सबन्ध हुआ तब उसमें उठने वाली वासना और कई कई हिस्सों में बाट दिया। वे हैं काम और भोग। वासना इन्द्रियों में नहीं उठती। वासनाएं मन में उठती हैं मन इन्द्रियों द्वारा काम्य और योग्य वस्तुओं का इन्द्रियां द्वारा उपभोग करता है। इसी लिये हमारी ५ इन्द्रियों का २ भागों में वर्षीकरण किया गया है।

ओरत और पशु कामेन्द्रियां हैं। जबकि घाण, रसन्य और स्पर्श भोगेन्द्रियां है।

काम का सम्बन्ध इच्छा से है वस्तु या विषय से नहीं। कान और आंख द्वारा शब्द और रूप का आसेवन किया जाता है इसमें यह आवश्यक नहीं कि शब्द या रूप वाले का कामी से सम्पर्क भी हो।

आप लोगों की सौंदर्यकिरूचि या संगीत के प्रति जितना आकर्षण है उतना सत्य के प्रनि होता। ये तुम्हारा जीवन सफल हो जाय।

सत्य विलीन सौंदर्य व्यर्थ होता है।

कामेन्द्रियां बिना वस्तु के सम्बन्ध के ही विषय का रमन करती है। भोगेन्द्रियां वस्तु के बिना संसर्ग के रमन नहीं कर

सकती। घ्राण रसना और स्पर्श वायु के सम्पर्क से तो ज्ञान करती है। जबान पर गुड़ या मिठाई न रखी जाय तब तक आपको उसका स्वाद कभी आ ही नहीं सकेगा। गंध रस और स्पर्श के ज्ञान के लिये वायु का संसर्ग आवश्यक है। इसी से इनको भोगेन्द्रियां कहा गया है।

शब्द में ध्वनि पहुंचाती है। स्फोट शक्ति से असंख्य लहरे उठती है। जिस प्रकार १ पत्थर या ईंट है पानी में डालने पर जब वह पत्थर गिर कर जमीन को छूता है, एक लहर उत्पन्न करता है। वह लहर मरते-मरते एक लहर और उत्पन्न कर देती है और दूसरी लहर तीसरी लहर को उत्पन्न करती है इस प्रकार लहरों से सारा तालाब भर जाता है।

इसी प्रकार शब्द जो उत्पन्न होता है वह टकरा कर कुछ अंश हमारे कानों में आता है। शेष अन्नत में विलीन हो जाता है।

इसी प्रकार देखने में रंग और प्रकाश की आवश्यकता रहती है।

गंध, रस और स्पर्श भोग के विषय है। चम्पा की सुगंध साक्षात सम्बन्ध के बिना मालूम नहीं होती। मिठाई का स्वाद बिना चखे नहीं मालूम होता। इसी प्रकार तीन उष्ण आदि स्पर्श का ज्ञान भी बिना छुये नहीं होता।

इन्द्रिया ५ हैं, भोगेन्द्रिय पशुरिन्द्रिय, घाणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पशर्नेन्द्रिय।

मनोविज्ञान ने भी ये ५ ही इन्द्रिया बनाई, ६ नहीं। इन ५ इन्द्रियों को ४ रूप में बांटा गया। मनोविज्ञान ने इन्हें २ रूप में बांटा है। १ तो इन्द्रियां का बाह्य रूप और दो सवेदन रूप तत्व। जिसे आंतरिक रूप कहते हैं।

भगवान महावीर ने इन्हें ४ विभागों में विभाजित किया है द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय। द्रव्येन्द्रिय का सम्बन्ध पुद्गले से और भावेन्द्रिय का संबन्ध अन्य प्रदेशों से रहता है।

द्रव्येन्द्रिय दो प्रकार की होती है। १ निवृति द्रव्येन्द्रिय और उपकरण द्रव्येन्द्रिय।

भावेन्द्रिय २ प्रकार की हैं १ उब्धि रूप और उपयोग रूप।

आज का मनोविज्ञान निवृति द्रव्येन्द्रिय और उपकरण द्रव्येन्द्रिय में ही समाप्त हो जाता है इसके आगे एब्धि और उपयोग तक वह नहीं पहुंच सका है।

एब्धि का अर्थ है सत्तदकर्मों के क्षय या क्षयोपशम से जो इन्द्रिय शक्ति प्राप्त होती है उसे एब्धि कहते हैं। द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय द्वारा चितन तत्व के उपयोग का नाम है उपयोग।

५ इन्द्रियों के २३ बिषय होते हैं।

१ द्रव्येन्द्रिय के तीन विषय—

१ जीव शब्द, दो अजीव शब्द और ३ मिश्र शब्द।

२ चक्षु इन्द्रिय के पांच विषय—

पांच प्रकार के रंग। कुछ और हैं रंग और कुछ सात मानते हैं पर ५ में सब आ जाते हैं।

३ घ्राणेन्द्रिय के २ विषय। सुरथिगंध और दुरथिगंध। गंध भी अनेक प्रकार की मानी जाती हैं। पर इन दो में सब गंध समाविष्ट हो जाती है।

४ रसनेन्द्रिय के ५ विषय—

५ प्रकार के रस में सभी बातों का समावेश हो जाता है।

५ स्पशनेन्द्रिय के विषय शील उष्ण आदि भेद संसार के

सभी स्पर्श समाविष्ट हो जाते हैं।

आज का मनोविज्ञान—इन्द्रिय और मन का सम्बन्ध मानते हैं। भगवान महावीर और भी आगे बढ़ते हैं। मैं मनोविज्ञान को तिरस्कृत नहीं करता। ज्ञान पिपासा के लिये दोनों पद्धति ग्राह्य है।

इन्द्रिय और मन का जो सम्बन्ध है इसमें मत भेद है। सम्बन्ध तो मानना ही होगा। अन्यथा एक इन्द्रिय का ज्ञान विषय दूसरी इन्द्रिय की प्रेरण का विषय कैसे बनाता। तथा इन्द्रिय द्वारा ज्ञान–ज्ञान के भण्डार को स्मरण रखने वाला कौन होगा।

अतीत के ज्ञान को संस्कार के रूप में वर्तमान में डाला और वर्तमान में भविष्य के दिये अनुभव का उपयोग करना मन का काम है।

मन भी दो प्रकार का है, विज्ञान ने अलग-अलग कांशियस का निरुपण किया है। पर मन को एक प्रकार का ही धनी है। मनोवैज्ञानिकों ने ६ प्रकार की मानसिक इच्छायें मानी है। युद्ध अन्तकार काम आदि—स्वाभाविक ६ इच्छाये स्वीकार की है। परन्तु जैन दर्शन में मन के भेद माने हैं। १ द्रव्य मन और २ भाव मन। पन्द्रह का समूह जिसमें विचार किया जाता हैं। वह बल्ब की तरह है उसे द्रव्य मन कहा है। आत्म पावर हाउस की तरह है। जब मन की एकाग्रलता या एक तार आत्मा की ओर हो जाती है तब मन जगमगा उठता है। स्वभाव मन है जब नाइट जाग्रण हो जाती है, प्रकाश हो जाता है वह चतैन रूप है। मन में जड़ और चैतना का समन्वय है। मन जब जड़ की तरफ जाता है उसका सबंध इन्द्रियों से होता है और वह भौतिक पदार्थों से अपना संबंध बनाता है घर, बार, स्त्री, पुत्र, परिवार

को अपना समझता है वह जड़ रूप हो जाता है ।

इसीलिये किसी भी धर्माचार्य जब धर्म आराधन का कहा होगा। यही कहा होगा कि पहले मन को बाह्य पदार्थों से खींचों । आंख कान आदि इन्द्रियों को बन्द करके अनामु खी बनो अन्दर की तरफ देखो । बहिर्जगन से अन्तर्जगन की ओर आओ । जड़त्व से हट कर चैतनत्व की ओर झुको ।

मन मंदिर में भगवान को बिठाओ मन से प्रभु का संबंध कर देते ।

अमर कुंवर ने यही तो किया था। उसने भगवान से अपने मन की एक तारता कर दी । मैं जरा अमर कुंवर का आख्यान कह जाऊं ।

अमर कुंवर ब्राह्मण पुत्र था। सात भाइयों में व मध्य था। अर्थात वह चौथा पुत्र था। एक बार वह मार्ग में खेल रहा था। मुनिराज पधारे, वो दुनिया को पार होने का रास्ता बताने वाले इस ससार का रास्ता भूल गये । उन्होंने अमर को पगडंडी पूछी । अमर भारतीय संस्कृति का पढ़ा सपूत था। उसने कहा चलिये मैं आपको रास्ता बता दूं ।

उस दुनिया का रास्ता बताने वाले इस दुनिया के रास्ते भूल जाते हैं और इस दुनिया के रास्ते बनाने वाले खगोल अभी भूगोल के पण्डित उस दुनिया के रास्ते भूल जाते हैं ।

बच्चे ने पगडंडी बनाई । सन्तों ने कहा—बेटा तूने हमें पगडंडी बताई हम भी तुझे पगडंडी बताते हैं जिससे तू इस भवअरवी से पार हो सके और उन्होंने भगवान का नाम जपना सिखा दिया ।

राम वनबास को जा रहे हैं। गंगा पार होने का अवसर आया । राम सीता और लक्ष्मण से वह कहने लगे—भई हमें पार

उतार दो। कंवर ने राम की महिमा सुन रखी थी। कंवर कहने लगा—

पान मेरी सतरी, एकद सुत बोर बोर,
केवर की जाति कछु वेद न पढ़ाइहौं।
सब परिवार मेरो याही रात्री राघो जू हौं,
दीन वित्त हीन कैसे दूसरी गढ़ाइ हौं॥
गौतम की घरनी ज्यों सरनी से रगी मेरी,
प्रभु सौं निषाद ह्वै के वाद न बटाइ हौं।
तुलसी के ईस राम, रावरी सौं सांभी कटों,
बिना पग धोये नाथ नाव न चढ़ाइ हौं॥

भगवान आपकी चरण रज में न जाने क्या जादू है। कहीं मेरी नाव का उद्धार हो गया। अभी वह भी एक और स्त्री हो गई तो मैं गरीब इतने बड़े परिवार का पालन पोषण किसके आधार से करूंगा। भक्ति का अतिरेक था।

कटौरा मंगाया गया। भगवान के पैर धोये गये। पैर धोकर उस पानी को निषाद अपने घर ले गया। निषाद वापस आने में देर कर चुका था। इधर लक्ष्मण के मन में अभियान आ गया था कि भगवान की सेवा करने वाला एक मात्र अनन्य याद मैं ही हूं। राम ने कहा—जरा लक्ष्मण जाना तो निषाद ने देरी क्यों कर दी। राम के आदेश से लक्ष्मण निषाद को पर्णकुटी में जाते हैं, वहां जाकर क्या देखते हैं। निषाद राज का परिबार भगवान के चरणमृत को बांट २ कर दान कर रहे हैं। भक्ति की इस सम्यमता को देखकर लक्ष्क्षण का अभिमान चूर २ हो गया।

निषाद आया और संसार के पार लगाने वालों को पार

लगाने लगा। पार पहुंचकर राम ने सीता की मुद्रिका दी। नाविक ने कहा—

आपका हमारा धंधा एक। आप अब सागर से पार करो। मैं गंगा पार लगाया हूं। भला—अपने ही धन्धे वाले से कड़ी परिश्रमिक किया जाता है। यदि आप मुझे पारिश्रमिक देना ही चाहते हैं तो आप भी मुझे अपनी नाव से पार उतार देना।

सन्तों ने पगडंडी बताने वाले को पगडंडी बता दी। बिना पारिश्रमिक दिये बड़े लोग काम नहीं कराते।

कीर्ति का मोह

उस ब्राह्मण पुत्र के नगर के राजा की बात सुनाई जा रही है। राजा के महल बिना क्या चल सकता है। और महल भी कैसा, जैसा कि सारे देश में न हो। वह ऐसा महल बनाना चाहता था—जिसके आश्चर्य की बातें सारे जगत में हो।

राजा महल बनाने के लिये जगत के प्रसिद्ध कलाकारों और शिल्पियों को आमंत्रित किया। महल का रूप रंग और आकार प्रकार अनोखा था। कलाकारों ने अपनी कला की इति श्री करदी, महल तैयार हुआ। पर, महल का मुख्य द्वार बनता और बिगड़ जाता है। उसकी कमाल एक बार–दो बार, ३ बार टूट गई। कमान बनती ही नहीं।

राजा और कलाकार आश्चर्यचकित हो गये। सोचने लगे–यह कैसा जादू ? राजा ने विद्वानों को बुलाया। उनसे परामर्श किया। पर, उत्तर सरल न था। यहां प्रत्यक्ष प्रमाण की

आवश्यकता थी। महल के द्वार की महराब बनाने का प्रश्न था।

पैसा पानी की तरह बहाया जाने लगा। धन का भण्डार खाली होने लगा। पर राजा की साध पूरी न हो सकी।

इतने में एक त्रिकालश (ज्योतिषी) आ गये। वे भूत भविष्य वर्तमान को गणित और पंडित के आधार से बताते थे। उन्होंने कहा—महाराज ! इस महल का सिंह द्वार चुनना ही तो एक यज्ञ करिये। जिसमें बत्तीस लक्षण वाले किसी किशोर का हवन करिये।

राजा मोहाविष था। उसे अपनी कीर्ति का मोह था। परन्तु बत्तीश लक्षणी किशोर को लाना कोई साधारण बात न थी।

राजा ने घोषणा करा दी कि जो बत्तीस लक्षणी किशोर को योग के लिये देगा—उसे दस लाख मोहर राजा की ओर से भेंट की जायेगी।

पैसे के लिये अपने कलेजे को काट कर कौन देता है। पर, उस नगर में एक गरीब ब्राह्मण रहता था ! सात-सात पुत्र होते हुए भी उसे दर-दर की ठोकरें खानी पड़ती थीं। सुबह खाने को मिलता तो शाम को भोजन के लाले पड़ जाते थे।

उसने सोचा यदि १ पुत्र न रहा तो न सही। जन्म-जन्म का दारिद्र तो दूर हो जायेगा। दस लाख मोहरों का लोभ—ब्राह्मण ने ब्राह्मणी को भी समझाया और राजा के सामने पुत्र ला उपस्थित किया।

किशोर यह सब कुछ देख रहा था। उसके मन की व्यथा का विश्लेषण करना मानस-शास्त्रियों का काम है। मैं भी कर सकता हूं—पर इतना समय नहीं।

राजा ने दस लाख मोहरें देकर किशोर को स्वीकार किया। अन्त में राजा ने अन्तिम इच्छा के साथ तैयार होने का आदेश दिया।

कुमार ने राजा से ५–७ मिनिट विचारने के लिये मौन किये।

राजा की स्वीकृति पाकर वह अमर कुमार अलग बैठ गया, और भूमि पर एक लकीर खिंची। दो मिनिट बाद उसे मिटा दी। पुनः एक लकीर खिंची और दो मिनिट बाद मिटा दी। अन्त में तीसरी लकीर खींची और उस पर विचार निमग्न हो गया। ५ मिनिट बाद उठ कर राजा से कहा—

राजन अब आप अपना काम करिये। मैं तैयार हूं।

राजा और प्रजा-जन आश्चर्य में डूब गये। सोचा यह बत्तीस लक्षणा बालक है—ऐसा न हो कि कहीं काम अधूरा ही रह जाये, और सारा श्रम व्यर्थ जाये।

राजा ने अमर कुमार से पूछा—कुमार तुमने लकीरें खींची और मिटा दीं—इसका क्या कारण है।

'आप अपना काम करिये। अपना महल खड़ा करिये—आप को इसमे क्या मतलब? कुमार ने दृढ़ता बताई। उसे अपने कुरू में पूरी आस्था थी।

राजा ने पुनः अनुग्रह किया तो कुमार ने शांति से कहा—

'मैंने पतली लकीर अपने माता-पिता के लिये खींची थी। बालक जन्म लेता है—सबसे पहले सहायक माता-पिता होते हैं। परन्तु मेरे माता पिता धन के लोभ में वात्सल्य को भूल गये। वात्सल्य धन से पराजित हो गया—इसलिये पहली लकीर मैंने मिटा दी।'

'दूसरी लकीर राजन्! तुम्हारे निमित्त से लगाई थी।

मैंने सोचा जब दुनियां में सब सहारे टूट जाते हैं···तब राजा अपनी प्रजा को स ारा देता है। और वह प्रजा का रक्षण करता है। परन्तु कीर्ति के मोह में आप भी धर्म को भूल कर मेरी आहुति देने को तत्पर हैं। इसलिये मैंने खिची हुई दूसरी लकीर भी मिटा दी।'

'राजन् जब संसार में सब सहारे समाप्त हो जाते हैं, तब एक मात्र भगवान का ही सहारा शेष रहता है, मेरे गुरू ने भगवान का नाम अन्तिम सहारे के लिये बताया है—इसलिये ये तीसरी लकीर मैंने उसके नाम की खींच दी है। मैंने अपना मन उसकी ओर एकाग्र कर लिया है।

सुना री मैंने निर्बल के बलराम !

अत एव राजन् अब तुम चाहो वह कर सकते हो।

यह बात सुनकर राजा के हृदय का अन्तर्पटल खुल गया। बेहोशी दूर हो गयी। प्रतिष्ठा, कीर्ति और मोह का पर्दा फट गया। और राजा को अपना कर्तव्य समझ में आया। सिंह द्वार बने या न बने पर ऐसे कोमल किशोर की आहुति की क्या आवश्यकता है।

राजा ने पश्चातापभरे दिल से अमर कुमार को हृदय से लगाया और मस्तक आनंदाश्रु की वर्षा की।

मन की एकाग्रता और प्रभु नाम की महिमा अपरंपार है।

भजन

भाइयों और बहनों !

यदि आपको भूख नहीं लगती, जिव्हा को स्वाद नहीं मालूम होता, तो आप और आपके परिवार वाले इसे बुरा समझेंगे, इसे रोग मानेंगे और आवश्यक उपचार की सम्मति देंगे। आपका भोजन शरीर को जीवित रखने के लिये आवश्यक है। इसी प्रकार मन और आत्मा की क्षुधा है। यदि आपको भजन की भूख नहीं लगती, आपका मन प्रभु के चरणों की शरण पाने को आकुल नहीं होता और आप अपने में ही डूबे हुये हैं तो आपको पेट की भूख न लगने के समान रोग कहा जायेगा, भाइयों ! इसलिये भजन आवश्यक है।

इस हेतु कि आपका उत्थान, पतन, जीवन, मरण आदि सब आपकी भावना पर निर्भर है और भजन भावना को शुद्ध करता है।

विषधारी बिच्छू जब काटता है तब काटे हुये व्यक्ति की पीड़ा बिच्छू की गति के अनुरूप चलती है, बढ़ती घटती है। इसे कहेंगे आकर्षण का सिद्धान्त। भावना से आकर्षण के अनुरूप ही फल प्राप्त होंगे। अशुद्ध भावना अशुद्ध फलों को सामने लायेगी और शुद्ध भावनायें शुद्ध परिणाम देंगी।

आत्मा की उपेक्षा करके शरीर को टिकाये नहीं रख सकते। शरीर बलवान हो और आत्मा निर्बल हो तो जीवन नहीं चल सकता। स्वस्थ शरीर और निरोग आत्मा लेकर ही जीवन सफल हो सकता है। इसलिये आत्मा की स्वस्थता के लिये भजन की आवश्यकता बतलाई है।

आप जानते हैं कि गौ घास चर कर दूध देती है। घास में तो पानी है। घास का घी बना, परन्तु वैज्ञानिक घास में से दूध नहीं निकाल सके। दूध तो गाय का अपना प्रेम और अपनी भावना देती है। इस प्रकार शुद्ध भावना और शुद्ध भजन जीवन के दुग्ध को जन्म देगी। वह दुग्ध है आनन्द। जिसकी प्राप्ति के बाद कुछ पाना शेष नहीं रह जाता।

आज से मनुष्य की आत्मा की भूख खराब हो गई है। इसी से वह इतनी उलझनों और समस्याओं में फंसा है। जिस प्रकार भोजन सादा और सात्विक होना चाहिये, उसी प्रकार भजन भी सादा हो। गरिष्ट नहीं। गरिष्ट भजन वह है जिसमें आप प्रभु से विविध पदार्थ मांगते हैं और अपनी सारी जरूरतों की लिस्ट उसके सामने रख देते हैं। क्या यही भजन है ?

यदि आप इसी को भजन या प्रार्थना समझ बैठे हो तो अन्धकार में भटक रहे हैं। इसके अलावा जिस प्रकार केवल जीभ हिलाने से और दिन भर भोजन भोजन कहने से पेट नहीं भर जाता, उसी प्रकार केवल राम राम कहकर माला के मनके फेरने से राम नहीं मिल जाता। भावना और मन के योग की आवश्यकता है।

भोजन और भजन जिव्हा के द्वारा होता है। लेकिन भजन बाहर न कर आत्मा में पहुँचाना चाहिये। जिस प्रकार भोजन पेट में पहुँचाना आवश्यक होता है।

भजन को अपनी जरूरतों की सूची बना कर गरिष्ट न बनाओ। वरना वह आपको पचेगा नहीं और अवलम्बन बन जायेगा। आत्मा का आनन्द न होकर वाणी की बकवास हो जायेगा। भजन आत्मा का संगीत है। जब मन और आत्मा समस्त इच्छाओं से परे आनन्द के हिलोल से तरंगित होती है तब भजन की उत्पत्ति होती है। वह आत्म मस्ती की गूंज है।

भजन के पहले मन और वाणी का समन्वय होना आवश्यक है। क्योंकि वाणी का संबंध मन से, मन का आत्मा से और आत्मा का परमात्मा से है।

प्रार्थना अथवा भजन का उद्देश्य कुछ भी मांगना नहीं है। मांगने से कुछ नहीं मिलता उलटी भावनायें अशुद्ध होती हैं।

संसार के सभी धर्मों में, सबकी प्रार्थनाओं में मांगा जाता है। लेकिन केवल जैन धर्म ही ऐसा है, जो अपनी प्रार्थना में मांगता नहीं। वह पुरुषार्थका प्रहरी है। आप यह समझ लीजिये कि भजन भीख नहीं है। संसार के पदार्थों को पाने की फरियाद नहीं है। वह आत्मा का सौंदर्य हैं, गीत है, जो आत्मा की पवित्रता और मुक्ति के लिये गाया जाता है। इसे आप अपनी जरूरतों में फंसा कर बोझिल न बनाइये।

मुसलमानों में भी यह प्रथा है कि अपनी प्रार्थना में वे कुछ चाहते हैं, मांगते हैं। नमाज के बाद रिजक 'रोटी' देने को कहते हैं, मानो अल्ला ताला रसोई घर या ढाबा चला रहा हो। ईसाई भी आजिजी पूर्वक कहते हैं 'अब हमें प्रार्थना में मत डालना !' इसी प्रकार कुछ हिन्दुओं की प्रार्थनायें भी अपनी इच्छाओं की पूर्ति के निवेदनों से भरी पड़ी है। लेकिन जैनों में मांगा नहीं जाता। आत्माभिमान से लेकर, आत्म विश्वास लेकर चलने की सीख उसने दी। हमारी प्रार्थनाओं में आचार्य, सिद्ध, अनन्त

बनने को, उनके समान बनने की भावना है। हमने अप्पा सो परमप्पा माना है।

वास्तव में प्रार्थना स्वयं से करना है। किसी दूसरे से नहीं करना है। क्योंकि जो परमात्मा पूर्ण है वह तो भाइयो, लेन देन का बिजनेस नहीं करता। वह क्या इन व्यवहारिक कार्यों में पड़ने आयेगा। इसलिये वह किसी को कुछ देना लेता नहीं। जो अपूर्ण है वह किसी को क्या देगा। इसलिये प्रार्थना को मांगने की कला मत बनाओ। ऐसा करने पर आप भजन की वास्तविक भूमिका पर आ जायेंगे। जो अनन्त है, जो सिद्ध है, वह मैं हूँ—जब आप ऐसा निश्चय कर चिन्तन करेंगे तो आप स्वयं भी वैसे बनेंगे। ऐसी प्रार्थना सांसारिक विश्वासों और स्थितियों से आपको ऊपर उठायेगी।

प्राथ्र्य को बड़ा मत समझो। प्रार्थी मत बनो। लोक व्यवहार में किसी को बड़ा मानकर सम्मान देना ठीक है, लेकिन बड़ा है इसलिये अपनी आत्मा को क्षुद्र मानना गलत है। यह आत्म हनन हुआ। इसलिये व्यवहार में भले ही बड़ा समझो, निश्चय में नहीं। व्यवहार की कमजोरी प्रेरणा बनेगी। यदि आप ईश्वर को ईश्वर—महान उन्नत समझ कर प्रार्थना करते रहें तो वह अनन्त ही रह जायेगा और आप अन्त ही रह जायेंगे और मेल कभी न होगा। ईश्वर नहीं चाहता कि आप उसे अपने से दूर रखें या बड़ा समजें। वह तो आप है। यदि परमात्मा-परमात्मा बना रहे तो, उसका परमात्मापन नहीं।

यदि गुरु-गुरु बना रहे और विद्यार्थी को आजीवन मूर्ख विद्यार्थी बनाये रखे तो क्या विद्यार्थी का उद्धार सम्भव है? नहीं। इसी प्रकार भजन, चिन्तन, और श्रद्धा भावना के बल पर ऊपर उठकर परमात्मा बनता है।

चिन्तन कीजिये कि आपमें और शूद्रों में क्या अन्तर है ? उनके गुणों से आपके गुण कम क्यों हैं। इसी भावनामय प्रभु के चिन्तन का नाम भजन है। ऊपर उठने, पाप से परे रहने के प्रयास का नाम चिन्तन है। चिन्तन, भजन या प्रार्थना कर्म-काण्ड में नहीं है।

अपने अन्तरतम को पहचानने की सफल वैज्ञानिक प्रक्रिया का नाम है भजन। और अपने अन्तरतम में है क्या ! परमात्मा उसी को पहचानना। उसी को प्राप्त करना।

उसके और अपने बीच की दूरी को खत्म कर दीजिये। सारी विषमतायें समाप्त हो जायेंगी। समता स्थापित होगी। आखिर शास्त्रों में भी साम्य स्थिति को ही भजन की भूमिका बताया है न ? साम्य अवस्था ही सामायिक है। अपने चिन्तन में सब प्राणी, भूत, जीवों को अपने समान समझो। जीव सिद्ध के समान है और सिद्ध जीवन के समान है।

शुद्ध चिन्तन से सारी चिन्तायें दूर हो जायेंगी। मनुष्य का मनुष्यत्व उभर आयेगा। दृष्टि अन्तर्मुखी हो जायेगी और रास्ता साफ हो जायेगा। जब मार्ग स्वच्छ है तो किसी के प्रति राग द्वेष, हिंसा न रह जायेगी। सभी से प्रेम होगा और जहाँ प्रेम होगा वहीं सब कुछ होगा। कुशल, क्षेम, नेम, सब प्रेम में रहते हैं।

अतएव प्रेम प्याला पीजिये—और प्रभु का भजन कीजिये।

मैं जिस प्लेटफार्म पर बोल रहा हूँ, वह सेवा समाज का है। सेवा के नाम पर जिन व्यक्तियों को एकत्र किया गया है, यह सब उन्हीं की ओर से है। हम सेवा के साथ विनोद को मिला देना चाहते हैं। सेवा में सुख मानने वाले सच्चे विनोदी बन सकते हैं।

एक कवि कहता है—यदि आप हंसते हैं, तो सारी दुनिया आपके साथ हंसती है और आप रोते हैं तो अकेले रोते हैं। रोने वाले का कोई साथ नहीं देता। मनुष्य के लिये प्रेम हास्य अत्यंत आवश्यक है।

कवि बायरन की एक पंक्ति है—यदि मैं किसी भौतिक वस्तु पर हंसता हूँ तो इसलिये कि उसके जाने पर मैं रोऊं नहीं।

हास्य और विनोद के अनेक साधन आपको मिलेंगे। बच्चे से लेकर बूढ़े तक सभी विनोद में भाग ले सकते हैं। विनोद के लिये आयु की सीमा नहीं है। आप जानते हैं कि जार्ज बर्नार्डशा कितने लोकप्रिय थे। श्री गांधी जी के सरल हास्य तथा सरल विनोद से आप सब परिचित हैं।

जीवन के तत्व हैं—उत्साह और प्रगति। उनमें भी विनोद का होना आवश्यक है। विनोद के बिना व्यक्ति निरा कंकाल रहता है। आज हममें कमी है तो वास्तविक विनोद की।

अब जरा गौर से देखें। हम व्यवस्थाओं के पीछे अपने आपको बेच चुके हैं। कुर्सी पर बैठना आप अच्छा समझते हैं, पर कुर्सी बनाने वाले को नीचा समझते हैं और उसके कार्य को

नीच मानते हैं। प्रसी प्रकार धोबी, चमार, बढ़ई आदि को आप बुरा समझते हैं। सफाई और पवित्रता के साथ साथ सफाई और पवित्रता लाने वाले को भी अच्छा समझना चाहिये।

क्योंकि किसी के प्रति दुर्व्यवहार रख कर हम विनोदी नहीं बन सकते। समता को विषमता में बदल देने से विनोद का अंत हो जायेगा।

विनोद कई प्रकार हैं। यों समझिये कि जितने व्यक्ति उतने विनोद। साधु, बच्चा, बैरागी, संत राजा महाराजा और मजदूर के विनोद में पर्याप्त अन्तर है।

प्रेमपूर्ण परिश्रम भी विनोद बन जाता है। विनोद मनुष्य जीवन के लिये आवश्यक है। बचपन से बुढ़ापा आता है और यदि बुढ़ापे में बचपन आ जाये तो आदमी भगवान बन जाये। अतएव मैं आप लोगों से कहता हूँ कि अपने बच्चों को बूढ़ा न बनाइये। उनपर भविष्य निर्भर है और वे भविष्य पर निर्भर है एवं भविष्य विनोद पर निर्भर है। इसलिये विनोद का पान कीजिये। विनोद का नशा ही आपको आनन्द देगा, शराब का नशा नहीं। शराब का नशा तो उतर जाता है, पर आनन्द का परमानन्द नशा कभी नहीं उतरता।

अंग्रेज कवि शैली कहता है—I have drunken deep of joy, and I will taste no other wine to night. (The Censi)

अब मैं आपके सामने तीन प्रकार के विनोद रखता हूँ।

१—शारीरिक विनोद
२—मानसिक विनोद
३—आध्यात्मिक विनोद

आप इन तीनों में से चुन लीजिये। शरीर का विनोद चुनने

से पहले सोच लीजिये कि आप किसी दूसरे के शरीर को चोट तो नहीं पहुंचा रहे हैं और मन के विनोद के द्वारा दूसरे के मन को तो नहीं मार रहे हो। इसलिये विनोद का मार्ग सहज सरल नहीं है। सोच-विचार कर आपको इस पर चलना पड़ेगा कि कहीं विनोद में निकला आपके मुख का कोई कटु शब्द दूसरे के हृदय में घाव तो नहीं बना देगा। सच्चा विनोद आत्मा से प्रगट होता है। सच्चा विनोद अन्तर्नाद है। जब मनुष्य चिन्ताओं को छोड़ कर आगे बढ़ता है तब उसके मानस सरोवर में विनोद का कमल खिलता है। विनोद तभी सच्चा है जब वह सबके लिये समान रूप से उपयोगी है। सबके काम आता है। हंसाने वाला और हंसने वाला दोनों जिससे प्रसन्न हों। ऐसा नहीं कि विनोद प्रिय हंसोड़ तो हंसता रहे और दूसरा साथी रोने लग जाये। ऐसे विभत्स विनोद की समाज में आवश्यकता नहीं। इसलिये मेरा कहना है कि विनोद आध्यात्मिक होगा, तभी वह लोक सुख का, आनन्द और कल्याण का कारण बनेगा।

इसके पहले कि मैं आध्यात्मिक सुख और विनोद के क्षेत्र में आपको ले जाऊं, मैं आपको एक विनोद कथा सुनाऊं जो सुधारकों और समाज सेवकों के लिये बड़ी स्मरणीय है। रोहतक की बात है। एक नन्हीं आठ वर्षीय बालिका का विवाह हो रहा था, रात में लग्न बेला पर लड़की विवाह मंडप में ऊंघ गई। उसकी मां ने जगा कर कहा बेटी विवाह के फेरे ले ले। लड़की उनींदे स्वर में कहती है, मां तू ही ले ले, मुझे नींद आ रही है। यह है हमारे समाज की दुर्दशा। जीवन का कितना गहरा व्यंग इस बालिका की दुखद कथा में भरा है, आप सोच सकते हैं। यहां विनोद तो है ही, हमें शिक्षा भी मिलती है।

अब आइये आध्यात्मिक विनोद जगत की ओर। यह तो एक दूसरी ही दुनिया है। यहां आपको उस सांसारिक शिकारी का विनोद नहीं मिलेगा, जो पंछी और पशुओं को तड़पा-तड़पा कर मारने में अपने विनोद की पूर्ति पाता है।

यहां तो पहले सामने वाले का ध्यान रखा जाता है। स्वयं आनन्द की हंसी प्राप्त करें और दूसरों को भी उसे परितृप्त करें। यह तो 'लव इज गॉड एण्ड गॉड इज लव' का अमर सिद्धान्त चल रहा है।

प्रेम हरि का रूप है, त्यों हरि प्रेम स्वरूप,
एक होय द्वै यो लखे, ज्यों सूरज अरु धूप।

इस परमानन्द को प्राप्त कर भक्त और भगवान एक हो जाते हैं।

प्रेमानन्द की सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त होते ही आरम्भ की दशा नहीं रहती और दो मिलकर एक हो जाते हैं। फिर कौन विनोद की ओर और कौन विनोद सुनने वाला, फिर तो मात्र विनोद ही रह जाता है। यह है आध्यात्मिक विनोद की एक झलक। भक्त और फगवान का विनोद।

यत्प्राप्य न किञ्चिद् वाञ्छति न शोचति न द्वेष्टि न रमते नात्साही भवति।

वैष्णव कवि अपनी भक्ति के आनन्द में विनोदपूर्ण क्रीड़ा-स्थली का वर्णन करता है :—

अखिल विश्व है एक तत्व का, दिव्य रूप अभिराम।
भेदभाव का हो अभाव तो, घट-घट में घनश्याम॥
पग पग पर प्रिय पुण्य भूमि है, बात बात में वेद।
जन जन जग में दिव्य देवता, रोम रोम में राम॥

एक तत्व का अभिराम रूप है यह विश्व। भेदभाव न हो

तो घनश्याम कितने सुलभ हो जायें ? यह है सन्तों महन्तों और अर्हन्तों का विनोद स्थल ! निष्काम कर्म करने वाले कितने और निस्वार्थ स्नेह मानने वाले कितने ?

चहन हारे सुख सम्पत्ति के, जग में मिलते घनेरे ।
कोई एक मिलत कहुँ प्रेमी, नगर बगर सब हारे ।

यह तो इष्ट विनोद है, एक प्रकार का । दूसरे प्रकार का विनोद 'शिकारी और शिकार वाला' मैं आपको बता चुका हूँ । वह है निकृष्ट विनोद । आप निकृष्ट विनोद की ओर न जाइये ।

महावीर स्वामी का विनोद इष्ट विनोद था । राजा सत्य हरिश्चन्द्र का विनोद भी इष्ट विनोद था । एक ने मानव जाति में मिल रहे पशुत्व को, हिंसा को दूर किया, दूसरे ने सत्य को अपना खेल बनाया । हंसते-हंसते हरिश्चन्द्र ने चण्डाल के घर बिक जाना पसन्द किया, पर अपने सत्य को न छोड़ा ।

अहं और पाप त्यागने का विनोद आप अपनाइये ।

जहां आपा तंह आपदा, जहां संसय तंह सोग,
यह आपा तूँ डारिदे, दया करे सब लोग ।

दूसरे सन्त ने कहा है :—

आपा मेटो हरि भजो, तनमन तजो विकार ।
निर्वैरि सब जीव सो दादु यह मतो सार ।।

भाइयों, जैसा जैसा व्यक्ति है, वैसा वैसा उसका विनोद है । पिता पुत्र का, भाई-भाई का, गुरु शिष्य का भक्त भगवान का विनोद अलग अलग है । जरा गुरु का खेल देखिये—

गुरू धोबी शिष्य कपड़ा साबन सरिजन हार ।
सुरत शिला पर सोइये, निकसे मैल अपार ।।

और :—

'डूबे सो बोले नहीं, बोले सो अनजान,
गहरो प्रेम समुद्र को, डूबे चतुर सुजान ।।'

'वो वाचल है, अपने अहं को सिर पर लपेटे घूम रहा है । वह प्रेम सागर की गहराई को नहीं जानता है । जिसे भान है वही गहनता को प्राप्त है ।'

तो मैंने आपको विनोद के विविध रूप दर्शाये हैं । उनके दो भाग कर सकते हैं, प्राचीन और अर्वाचीन । प्राचीन विनोद में सत्य, अहिंसा, प्रेम, आज्ञा-पालन आदि थे । नवीन—आज के विनोद में, प्रेम शायद नहीं, सत्य भी नहीं अहिंसा के स्थान पर हिंसा है । यदि सच्चा विनोद है मनुष्य में तो वह जीवित रहेगा, अन्यथा उसकी दशा इस प्रकार की हो जायेगी—

'निरुसाहस्य दीनस्य शोकपर्या कुलात्मन : ।
सर्वार्था व्यसिदन्ति व्यसनान् अनुगच्छति ।।'

अतएव आपके संस्कारों का, स्नेह का, सेवा और सधर्म का विनोद होना चाहिये । सच्चा विनोद यही है । इससे आपके मन, आत्मा और मस्तिष्क को शक्ति और शान्ति मिलेगी ।

कर्मशील, परिश्रमी व्यक्ति यदि अपना सच्चा विनोद नहीं बनाते तो उन्हें कब्र में जाकर आराम करना चाहिये ।

विश्व का भविष्य

चइत्ता भारहं वासं चक्कवट्टी महिड्ढिओ
सान्ती सन्ति करे लोये पत्तो गइ मणुत्तरं ।

'विश्व' और 'भविष्य' दो शब्दों में आज की दुनिया की सारी कहानी छिपी पड़ी है। विश्व का भविष्य—आप कहें अथवा भविष्य का विश्व आप कहें बात एक ही है। भविष्य का विश्व कहने से हमें कुछ अनुमान लग सकता है कि आया वह आज के विश्व के सम्मान होगा अथवा इससे कुछ और प्रकार का! आज के विश्व से आप परिचित हैं। मनुष्य ने ज्ञान और विज्ञान के क्षेत्र में, कला और साहित्य के क्षेत्र में, जीवन और राजनीति के क्षेत्र में काफी उन्नति की है। दूसरी ओर उसकी अवनति भी कम नहीं हुई। यदि एक पक्ष प्रकाशपूर्ण है तो दूसरा सर्वथा अन्धकारमय। एक ओर ऊंचे-ऊंचे महल और अटारियां हैं, सुन्दर वस्त्रों में सजे नर और नारियां हैं, तो दूसरी ओर जानते हो क्या है? झोपड़ियां, फटे चिथड़े, गरीबी और गुलामी। आदमी बहुत ऊंचा चढ़ा, एवरेस्ट की चोटी पर बहुत ऊंचा पहुंचा, वायुयान पर उड़ा, लेकिन चढ़ने और उड़ने से ही उसका उद्धार नहीं हो गया। जितना ऊंचा उसका शरीर गया उतनी नीची उसकी आत्मा गई। इन्सान ने अपने ही जैसे इन्सान को या कहें खुद को मारने को परमाणु बम बनाये और खुद को

मारने के लिये युद्धों की रचना की। भौतिक वस्तुओं के विषय में उसने पर्याप्त सफलता पाई, पर उस पर स्वामित्व न पा सका। उसके हाथ में रह कर भी ये वस्तुयें उसके हाथ से बाहर रही। यही आज के आदमी की सबसे बड़ी कमजोरी है। यदि आदमी में आत्मा का बल होता तो ये भौतिक वस्तुयें उसके वश में रहतीं।

अब अधिक इस ओर जाने से विषयान्तर हो जायेगा। संक्षेप में कहूँ कि—यह है आज का विश्व और उसका इन्सान! जिसे अपने ज्ञान का मार्ग है, जो न होना चाहिये। जिसे अपने विज्ञान का अभिमान है जो उसे विनाश की ओर ले जा रहा है। यह आज की दुनिया है, जो कल की दुनिया हरगिज नहीं हो सकती। फिर कल की दुनिया, भविष्य का विश्व या विश्व का भविष्य क्या है, मैं आगे चलकर बताऊंगा।

बन्धुओं! विश्व से आपका मतलब इन्सानों की इस दुनिया से है। केवल इन ढाई अरब दो पैर वाले आदमियों से है। यही आपका मतलब है! तो आप गलती कर रहे हैं। दुनिया इतनी छोटी नहीं है। हमारी दृष्टि में कई दोष हैं। अभी हमने सब नहीं देखा है। कीटाणु देखने वाले बारीक यन्त्र हमारे पास होते हुये भी हमने बहुत चीजें नहीं देखी है। अरे भले लोगों! उन असंख्य प्राणियों का क्या होगा जो तुम्हें जिला रहे हैं। जिनके बल पर आपका, हमारा और समस्त सृष्टि का अस्तित्व निर्भर है।

ये कीड़े मकोड़े, गाय, भैंस, बैल, कुत्ते, घोड़े हाथी तो हैं ही, इनके अतिरिक्त नजर न आने वाले लाख-लाख जीवों का क्या होगा? वे भी तो विश्व में सम्मिलित हैं और जब आप नये विश्व के नये विधान का निर्माण करने चलें तो क्या इन अभागों

को भूल जायेंगे ? अपने विधान में इन अल्प संख्यक नहीं, बहु-संख्यक बेजबान जीवों के अधिकार सुरक्षित न रखेंगे । अपनी पार्लमेण्ट में इन्हें प्रतिनिधित्व न देंगे ? यदि ऐसा न हुआ तो मित्रों आपका गणतन्त्रात्मक राज्य एक मजाक बन जायेगा । इस लिये हमें विश्व शब्द के मोटे अर्थों को छोड़कर नये परिपूर्ण अर्थों में ग्रहण करना पड़ेगा ।

आपने स्वीकार कर लिया होगा कि जीवाणु जगत का हम पर कितना अधिकार है । वनस्पति को जीवित रखने वाले कीड़े न हों तो हम जीवित नहीं रह सकते । मातायें नौ मास गर्भ में रखकर शिशु को जीवनदान देती हैं और साल छः महीने दूध पिलाती हैं । उनका उपकार हम मानते हैं और कहते हैं कि—'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरियसी'' । माता को धरती से बड़ा माना है । शास्त्र कहते हैं पूज्यनीय व्यक्तियों में पहले माता का स्थान है । लेकिन यह माता तो दूध पिलाना बन्द कर देती है । दुधारू पशु दूध पिलाना बन्द नहीं करते । भला आप ही बतलाइये उनका उपकार और ऋण हम पर कितना है और वे हमारे अस्तित्व के लिये कितने उपयोगी एवं आवश्यक हैं ।

ऐसे विश्व में अनेक आवश्यक परिवर्तन लाने का श्रेय मनुष्य पर अधिक है । मनुष्य समस्त सृष्टि का नियन्ता है । प्रसिद्ध विद्वान कार्लाइलने मनुष्य को जन्मजात सैनिक कहा है । कवि की परिभाषा सर्वथा सत्य है । क्योंकि मनुष्य ने सदैव अमानुषिक शक्तियों से संघर्ष किया है । संघर्ष किया है । संघर्ष मानव जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है । संघर्ष न होने पर मनुष्य-मनुष्य नहीं रहता, केवल पेट भर लेने वाला जन्तु बन जाता है । इस प्रकार वह अपने पैरों पर चलने वाला नहीं वरन् रेंगने वाला जन्तु बन जाता है । इसलिये हमने कहा है कि संघर्ष मनुष्य के

लिये आवश्यक है, क्योंकि इसके द्वारा वह अपने सद्गुणों और अपनी अच्छाइयों को प्रकट करता है। ऐसे सद्गुणीं मनुष्य को न केवल अपने लिये लेकिन सारे प्राणियों के लिये परिवर्तन द्वारा नवीन विश्व की रचना करनी है।

विश्व का भविष्य—

यही हमारे आज के भाषण का विषय है। मैं यह भविष्य ज्योतिष के आधार पर नहीं बतलाने जा रहा हूँ क्योंकि मैं ज्योति पर विश्वास रखता हूँ न कि ज्योतिष पर। महात्मा गांधी ने कहा था—ज्योतिषियों के कहने पर विश्वास न करो क्योंकि उनका कहना सच हो तो भी उससे कुछ लाभ नहीं, इसलिये ज्योतिष को मैं अपनी भविष्यवाणी का आधार नहीं बनाऊंगा। आप कहेंगे—राजनीति के आधार पर अपना भाषण बनायेंगे? लेकिन राजनीति के आधार पर भी विश्व का भविष्य नहीं कहा जा सकता।

भविष्य किसी दूसरे के हाथ में नहीं—आपके, आपकी दुनिया के और आपके वर्तमान के हाथ में है। यदि मैं अधिक स्पष्ट कहूँ तो यों समझिये कि वर्तमान के बीज से भविष्य का वृक्ष पैदा होता है। मनुष्य की लगन, साधना और संघर्ष इस बोये हुये बीज को जलदान देते हैं। वास्तव में हमें यह जानना है कि आखिर काल क्या है? क्योंकि मैंने बतलाया कि मैं वर्तमान की चिन्ता करता हूँ, भविष्य की नहीं।

काल सतत गतिशील होने पर भी सदा शाश्वत है, गति जीवन है और स्थिरता मृत्यु है, यह भी बतला चुका हूँ। दार्शनिक काल को तीन भागों में विभाजित करते हैं। ज्योतिष पल, विपलों में और वैज्ञानिक तो काल के टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं।

तो क्या आपने मान लिया कि काल खण्ड-खण्ड हो गया ? वास्तव में आपने काल के टुकड़े-टुकड़े नहीं किये । काल ने आपके टुकड़े-टुकड़े कर दिये । मनुष्य मरे हुये वर्तमान को भूत कहता है और पैदा होने वाले वर्तमान को भविष्य कहता है । इस प्रकार भविष्य की आशा में जीता है । काल का अग्र भाग चित्रकार की कलम के समान होता है । जो वस्तु को आकार और उपयोग के रूप देता जाता है और उसका पिछला भाग प्रलय की पूंछ के समान अपने बनाये को ध्वंस करता जाता है । मित्रों ! यही कालचक्र है जो समूचे संसार को काटता चला जा रहा है। अब यदि आप इस चक्र से बचना चाहते हैं, तो समय की हत्या करना छोड़ दो, क्योंकि काल बदला लेता है । वह अपने हत्यारे को कभी क्षमा नहीं करता । इस काल का बल असीम है । काल में, यह विश्व के गेंद या खिलौने की तरह खेल रहा है । अतएव उसकी मजाक करना मनुष्य की सभ्यता के बाहर है । लेकिन स्मरण रखें, मनुष्य काल का खिलौना है, किन्तु उसकी आत्मा नहीं, आत्मा, काल से प्रबल है, और वह सदैव शाश्वत है, इसलिये काल के थपेड़ों से बचना अपने भविष्य को सुरक्षित करने के लिये वह चिन्तित है, लेकिन आत्मा को जड़ मानने वालों को भविष्य और अतीत जड़ है । चैतन्य मानने वालों की आत्मा सदा चैतन्य के रूप में अपनी रक्षा करेगी. जड़ के रूप में नहीं । अतएव आत्मा को जड़ मानते वाले काल चक्र से नहीं बच सकेंगे ।

अतएव समय का प्रमाद न करो । काल की हत्या न करो । वर्तमान ही आपके सामने भविष्य बनके आवेगा । यदि हमारे प्रयत्न पूर्ण है और साधन शुद्ध हैं तो भले वर्तमान अत्यन्त गरीब क्यों न हो, भविष्य कभी करीब नहीं रह सकता, हम जिन चीजों

का बीज बोते हैं उसका फल पाते हैं। यह बात भविष्य के सम्बन्ध में भी लागू होती है। आप भोजन करके बारम्बार भूख को इसलिये मिटाते हैं कि आगे आपको भूख न लगे। कपड़े इसलिये पहनते हैं कि सर्दी गर्मी से पीड़ित न हों। और भाइयों! आप मकान इसलिये बनाते हैं कि वर्षाजन्य असुविधाओं से बचे रहें। हमारी सारी व्यवस्था भविष्य के लिये है। इस प्रकार आप देखते हैं कि हम वर्तमान का प्रत्यक्ष कार्य भविष्य के लिये कर रहे हैं। इससे भविष्य का महत्त्व मालूम पड़ता है। जब भविष्य इस प्रकार अहमियत रखता है तो हम उसके प्रति उदासीन नहीं हो सकते। मकान के उल्लेख पर मुझे याद आया कि जो मकान मनुष्य ने सर्दी गर्मी से बचने के लिये बनाये वे आज की असमानता के प्रतिनिधि और दावेदार बन गये। बड़े-बड़े भवन और इमारतों के स्वामियों का उद्देश्य आंधी ओलोंसे अपनी रक्षा नहीं, वरन् इन इमारतों द्वारा अपने वैभव की प्रदर्शनी करना है। इस तरह तो हमारे समझदार कहलाने वाले आदमी ने नई समस्या खड़ी कर ली है। आदमी क्या है? मिट्टी का चोला बाबा मिट्टी में मिल जायेगा। यह हुई हमारी गली-गली में फिरने वाले दार्शनिकों की परिभाषा। लेकिन आदमी मिट्टी का ही पुतला होता तो पिछली बरसात में आधा हिन्दुस्तान गल जाता। पंच तत्व का अद्भुत सत्व इन्सान है। इसी इन्सान ने अपनी रंग-बिरंगी दुनिया बनाकर एक अजीब तमाशा खड़ा किया है।

पिछले जमाने में मनुष्य के सन्मुख इतनी समस्यायें नहीं थी, जितनी आज हैं। यद्यपि प्राचीन और अर्वाचीन दुनिया के जनसाधारण का उद्देश्य एक ही रहा है। पिछले जमाने में संसार कामिनी और कंचन के पीछे पागल था। और आज का सारा संसार सत्ता और सम्पत्ति के पीछे दौड़ रहा है। जरा बतलाइये

इस दौड़ का कहीं अन्त है। ये बड़े-बड़े बाजार और इनके स्वामी सिक्के के पीछे विक्षिप्त हो उठे हैं। मानों मुद्रा ही मनुष्य को मुक्ति देगी। इस इन्सान का दूसरा पागलपन सत्ता के पीछे लगना है। ज्यों-ज्यों वह अधिकारों को हथियाता जा रहा है, त्यों-त्यों उसकी लालसा बढ़ती जाती है। आज का मनुष्य अधिकारों के मद में बावला बन गया है और अधिकारों के लिये अधिकाधिक हिंसा और अन्याय अपना रहा है, लेकिन अधिकार कहीं शक्ति के प्रयोग से मिलते हैं। अधिकार तो सेवा और त्याग से मिलते हैं। सत्ता से प्राप्त शक्ति सत्ता से समाप्त कर दी जायेगी और धर्म के आधार पर खड़ा किया गया पाखण्ड धर्म के द्वारा ही विनष्ट होगा, क्योंकि याद रखिये अन्याय स्वयं अपना विनाशक है।

आज सत्ता और सम्पत्ति ने भगवान को बन्दी बना लिया है। पूँजीपति स्वयं भगवान के आसन पर बैठ गया है। बड़े-बड़े मन्दिर बनाये, गिरजे बनाये और गुरुद्वारे बनवाये। उनमें ईश्वर का अस्तित्व माना और पूजा पढ़ाकर मन्दिर के द्वार बन्द करवा दिये। ताला लगवा दिया और चाबी अपने कोट के भीतर पाकिट में रख ली। उधर भक्तों बिना भगवान बेचैन हैं। इधर भगवान के बिना भक्त बेचैन। बेचारे दोनों लाचार और चाबी पैसे वालों के पाकिट में। उसने समझा कि वही चाहे तो दुनिया को ईश्वर का दर्शन करा सकता है। लेकिन बात ऐसी नहीं है। यह मात्र उसका भ्रम है। भ्रम की दवा तो लुकमान हकीम के पास भी नहीं है।

भाइयो ! यह जो सम्पत्ति भगवान को बन्दी बना रही है और दरिद्रनारायण को रुला कर एकत्रित की गई है, वह रुदन ध्वनि के साथ ही बिदा हो जायेगी। सिर्फ धर्म की राह पर चलते हुये ही एकत्रित की हुई सम्पत्ति फूले फलेगी। यह हमेशा याद

रखिये जैसा कि डाक्टर लोगों ने बतलाया है। आपत्ति आदमी को मनुष्य बनाती है। और सम्पत्ति उसे राक्षस बनाती है। अब यह आपके हाथ में है कि मनुष्य बने या राक्षस। रास्ते दोनों खुले हैं। किसी परवाने की जरूरत नहीं, लेकिन मैं इतना ही कहूँगा कि अधर्म में बनाई हुई सम्पदा से तो सदाचारी की गरीबी और मुफलिसी कहीं अधिक अच्छी है।

अब तक के भाषण से आपको ज्ञात हो गया होगा कि असमानता, अज्ञान, हिंसा, परतन्त्रता और शस्त्रों का शासन विश्व के भविष्य को अन्धकार में ले जाने वाली शैतानी ताकतें हैं। इनसे आज यानी वर्तमान की रक्षा कर हम विश्व के भविष्य को सुरक्षित रख सकते हैं। और वर्तमान का निर्माता मनुष्य है। मनुष्य मन का स्वामी है उसका दास नहीं। यदि हम मनुष्य के मन को वदलने में सफल हो गये तो विश्व के भावी मानव समाज का मन भी बदल जायेगा। और मानवता का भविष्य बहुत उज्वल और आलोकित हो जायेगा। इसके लिये हमें सबसे पहले अज्ञान का अन्त करना पड़ेगा, क्योंकि एक विद्वान के कथनानुसार आधी दुनिया नहीं जानती कि शेष आधी किस तरह अपने दिन बिता रही है। सैक्सपीयर ने अज्ञान को ईश्वर का अभिशाप माना है और ज्ञान को ऐसे पंख बतलाये हैं जिनसे हम स्वर्ग की ओर उड़ते हैं।

हाबेस नामक विद्वान् लिखता है:—"Knowledge is Power" ज्ञान ही शक्ति है।

विनोबा भावे ने भी अज्ञान के अन्धकार की ओर हमारा ध्यान खींचा है। उनके अनुसार अज्ञान से बढ़ कर कोई शत्रु नहीं।

इसके बाद संसार से हिंसा को मिटा देना होगा। हिंसा पर

मैं अधिक नहीं कहूँगा। पूर्व के सभी ज्ञानियों ने हिंसा के विरुद्ध बहुत कुछ कहा है और हमारे देश में अहिंसा के सन्देशकारों ने समय-समय पर जन्म लेकर संसार को ज्ञान दान दिया है। लेकिन पश्चिम के विद्वानों ने भी अपनी राय प्रकट की है, किन्तु पश्चिम ने अहिंसा के पुजारियों का मान सम्मान समुचित रूप से नहीं किया। नतीजा यह हुआ कि वहां हिलटर जैसे हिंसा शास्त्री पैदा हुये जिन्होंने बारम्बार संसार को भीषण युद्धों द्वारा दहला दिया।

आज की सभ्यता का सबसे बड़ा कलंक असमानता है। किसी ने इन्सानों को ऊंच-नीच नहीं बनाया। ज्ञानियों, सन्तों, और तीर्थंकारों ने नहीं कहा कि एक बड़ा और एक छोटा है। हमारे इस संसार में जहां छोटे-बड़े, अमीर-गरीब और काले-गोरे हैं, इससे तो कब्रिस्तान ही भला कि यदि उसकी मिट्टी खोदी जाय तो सब समान मिलेगी।

भाइयों ! जब मिट्टी के ढेलों में इतना ज्ञांन और ईमान है कि वे इन्सान में फर्क नहीं करते तो तुम क्यों अन्धकार में भटक रहे हो ? मैं यहां साम्यवाद और हिंसा द्वारा आने वाले ऐसे ही किसी परिवर्तन की पीठ नहीं ठोक रहा हूँ वरन् अमानवीय परिग्रह के विरुद्ध बोल रहा हूँ, जिसको महावीर स्वामी ने बुरा बतलाया है। लेकिन स्मरण रखें, गाँधी जी ने कहा था कि अपनी आवश्यकता से अधिक किसी चीज को लेना हिंसा और चोरी है।

जब दुनिया से असमानता, अज्ञानता और हिंसात्मकता मिट जायेगी तो यहां सबकी आजादी का सच्चा स्वरूप प्रतिष्ठित होगा और यहां शस्त्र के बल पर शासन करने वाले नहीं होंगे। युद्ध न रहेंगे। दुनिया में ऐसी आजादी आयेगी जो कानून की

पोथियों की आजादी नहीं होगी। मित्रों! बुलबुलें पिंजड़ों में नहीं गाती। यदि बाहरी बन्धनों में पड़े रहोगे तो तुम्हारी आत्मा की बुलबुल रोती रहेगी। महात्मा भगवानदीन ने लिखा है कि आजादी आत्मा की एक खास हालत का नाम है। शेर पिंजड़े में रहकर भी कुछ आजाद है, क्योंकि वह आदमी की गाड़ी नहीं खींचता है। किसान का बैल और सिपाही का घोड़ा खुले रह कर भी गुलाम हैं, क्योंकि वह जुए और साज के नीचे बंधे रहते हैं। इसलिये हमें समस्त संसार को आत्मा के राज्य में ले जाना जाना है जहां कानून की आवाज सर्वोपरि नहीं है, वरन् आत्मा की आवाज ही शासक है। जब ऐसी दुनिया बसेगी तभी विश्व का भविष्य सुरक्षित रहेगा।

मैं पहले कह चुका हूँ कि संसार में ऐसा राज्य लाने के लिये मानव-मानव में परिवर्तन लाना पड़ेगा, क्योंकि मनुष्य का इतिहास उसके मन का इतिहास है। मन को सन्मार्ग पर लाकर भी हम मनुष्य को मुक्त कर सकते हैं। शास्त्र भी मानते हैं कि मनुष्य का मन ही मानव जाति के मोक्ष या बन्धन का कारण है। इसलिये इस मन को बदलना है जो नियन्ता है। मन के मालिक मनुष्य के स्वभाव को बदलना है।

भाइयों, आप जानते हैं कि बिल्ली जिन जबड़ों से चूहों को चबाकर खा जाती है, उन्हीं से वह अपने बच्चों को उठा कर एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा करती है। 'नौ सौ चूहे मार बिल्ली हज को चली' ऐसी कुख्यात बिल्ली के बच्चों के शरीर पर आपने कभी उसके गड़े हुये दांत देखे होंगे ? नहीं। क्या कारण है कि चूहे के शरीर पर लगने वाले दांत बच्चों के बदन पर नहीं लगते। इसका प्रमुख कारण मन का स्वभाव है। आज हमें बिल्ली जैसे दांत वाले मानव समाज के स्वभाव को सही रास्ते

पर बदलना है। जब तक मनुष्य का स्वभाव नहीं बदलता तब तक यह सर्वव्यापी अन्धकार नहीं जाने का। बदले हुये स्वभाव का स्वामी ही संसार का संरक्षक बनता है। अशोक की प्रसिद्ध कहानी आप भूले नहीं होंगे। कलिंग देश के युद्ध में ५ लाख लोगों का संहार हो गया। अशोक का मन इस सर्वघाती संहार से भर आया और बदल गया अशोक की जो तलवार संहारक थी तारक—उद्धारक बन गई।

विश्व की वर्तमान राजनीति और पूर्व या पश्चिम की दर्शन-धारायें विश्व के भविष्य का निर्माण न कर सकेंगी, क्योंकि वे एकांगी हैं। पूर्वीय दर्शन जीवन की भौतिक आवश्यकताओं से सर्वथा कट कर चलता है। पाश्चात्य दर्शन ने भौतिक उपलब्धियों को ही सर्वस्व मान लिया है।

आज की सभ्यता चौराहे पर खड़ी है। उसके सामने चार लम्बे मार्ग खुले हैं। जनता चारों मार्ग पर चल चुकी है और उस के अनुभव असफलता की ओर अधिक बढ़े हैं। अतएव हमें एक सम्पूर्ण समन्वयात्मक पंथ की प्राप्ति करना है।

अभी मैंने जो चार मार्ग बतलाये हैं उनमें हैं—१ साम्यवाद, २ पूंजीवाद, ३ सम्प्रदायवाद—इसमें तानाशाही एकतन्त्रवाद भी ले सकते हैं। सारी संकुचित स्वभाव वाली सत्तायें इसमें सम्मिलित समझनी चाहिये, और चौथा है गांधीवाद जिसने सर्वोदय का नया नाम लिया है।

जैनधर्म पूँजीवादी वृत्तियों के एकदम विरुद्ध है। भगवान महावीर ने परिग्रह को सबसे बड़ा पाप बतलाया है। भला जिस जाति का एकमात्र उद्देश्य संग्रह हो वह कैसे संसार का हित कर सकती है। जिस प्रकार किसी गड्ढे में पुराना जल एकत्र हो जाता है और सड़ कर वायु को विषैला कर देता है, वही हाल

पूँजीवादी साम्राज्य का है। सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों में पूँजीवादी राष्ट्रों के स्वार्थों ने जो जुल्म ढाये हैं, वे आपसे छिपे नहीं हैं। भारतवर्ष पर विदेशियों के अत्याचारों की कहानी बड़ी लम्बी है। चीन पर जापान ने, ईरान में बाहरी लोगों ने, इजिप्त में अंग्रेजों ने संसार के अनेक देशों में अनेक साम्राज्यवादी-पूंजीवादी देशों ने अकथनीय अत्याचार किये हैं। मात्र विदेशी व्यापार पर, सिर्फ युद्ध के हथियारों पर जिनकी आर्थिक सम्पन्नता आधारित हो वह राष्ट्र और विचारधारा भला विश्व का भविष्य कैसे बना सकती है ?

यकीन मानिये पूंजीवादी रास्ता हमारे धर्म, ज्ञान, दर्शन और स्मृति के सर्वथा विपरीत है, क्योंकि हमने संग्रह में नहीं, त्याग में मोक्ष का मार्ग माना है। हम त्यागी सन्तों के आराधक हैं। अपरिग्रह हमारे यहां परम मान्य है। वह भौतिक संस्कृति पर आध्यात्मिक त्याग की सर्वोच्च विजय है। उसे अपने हाथों से न जाने दिया जाये, उसी के थोड़े बहुत अणु हमारे लोगों में होने से हमारी जातियां शेष हैं। पूंजीवादी वृत्ति ने पूंजी के उत्पादकों पर ही जुल्म करना चाहा है।

पूंजीवाद आत्मघाती है। अतएव भाइयों ! यह हमारा रास्ता नहीं है।

अब आता है साम्यवाद ! हमारी संस्कृति अहिंसात्मक सिद्धान्तों पर आश्रित है। यह अहिंसा हमने साल दो साल में नहीं सीखी। हजारों वर्षों की निरन्तर तपस्या द्वारा हमारे देश ने अहिंसा को पाया है। साम्यवाद का रास्ता हिंसा के क्षेत्र में होकर जाता है। अतएव उसे ज्यों का त्यों ग्रहण नहीं किया जा सकता। कम्युनिज्म सर्वहारा या प्रोलेतेरियत का एकतन्त्र शासन है। ऐसा उसके विधाता कहते हैं। लेकिन एकतन्त्रता में लोक-

तंत्रता की बात नहीं आती। इसमें बहुजन हिताय सिद्धान्त आ सकता है—सर्वजन हिताय नहीं। अतएव हमें यह सोच लेना है कि यह हमारे लिये कहां तक ग्राह्य है। साम्यवाद ने व्यक्ति की रोटी का प्रश्न हल किया है इसमें शक नहीं, किन्तु रोटी की समस्या के पश्चात जो सार्वकालीन, मानसिक अथवा आध्यात्मिक समस्यायें शेष रह जाती हैं, उसका कोई हल उसने नहीं किया। रोटी का सहारा है। अच्छे घर बार हैं। फिर भी एक श्रीमन्त दुखी क्यों? किसी को पुत्र नहीं, किसी की पुत्री विधवा है, किसी को प्रेमिका की लगन, कोई प्रेम में मग्न। भला बतलाइये ऐसे दुखियों को भौतिक साधन जुटा देने वाला राज्य कौन सी राह दिखायेगा? ऐसे पीड़ितों की आत्मा का मार्ग ही सहज शांति दे सकता है।

सम्प्रदायवादियों की संकुचितता आपको विदित है। जातियों उपजातियों और नाना पंथों में बंटकर हम गुलाम हुए हैं। गुलामी के कीड़े आज भी जनता की पीठ पर अपने चिन्ह बनाये हुए हैं। धर्म असहिष्णुता नहीं सिखाता। एकतन्त्रता हमारा धर्म नहीं, सिद्धान्त नहीं, रास्ता नहीं। सबकी मुक्ति में हमारा विश्वास है। व्यक्ति के अपने एकान्त उद्धार से समाज को कोई लाभ नहीं। सम्प्रदायवाद चुने हुये लोगों के चुने हुये अधिकारों का पोषक है। लोकतन्त्रवादियों ने तो इस प्रथा के खिलाफ आज आवाज उठाई है, लेकिन २५०० वर्ष पूर्व महावीर स्वामी अकेले ही तानाशाही को चुनौती दे चुके हैं। जैनधर्म ने सभी वाद या सम्प्रदाय को अपने शान्ति क्षेत्र में आने का निमन्त्रण दिया है। किसी के लिये अपना द्वार बन्द न किया।

हम एक व्यक्ति की पूजा के विरुद्ध हैं। जनता ही सर्वोच्च शक्ति और देवता है। इसके विपरीत हिटलर का यह भयंकर

विश्वास है, देखिये—The Fuehrer is the Party and the Party is the Fuehrer.

भाइयों ! हिटलर का मार्ग हमारा मार्ग नहीं। विश्व का भविष्य उस पर आश्रित नहीं रह सकता ।

अहिंसा को अपना अजेय अस्त्र बना कर चलने वाला अहिंसा वाद विश्व के लिये एकाकी मार्ग है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि हम इसमें कोई परिवर्तन नहीं चाहते। यद्यपि गांधी जी ने तो इस मार्ग के विषय में कहा है—

'यदि संसार के महामनीषियों ने अहिंसा तत्व को ग्रहण न किया तो उन्हें उसी पुराने तरीके पर ही लड़ कर दलबन्दी का मुकाबला करना पड़ेगा। लेकिन यही जाहिर होगा कि हम जंगली तरीकों से अभी आगे नहीं बढ़े हैं और हमने अभी भी ईश्वरप्रदत्त विरासत को समझना नहीं सीखा है और १६०० वर्ष पुरानी ईसायइत शिक्षा और उससे भी प्राचीन हिन्दू, बुद्ध तथा इस्लाम धर्म की शिक्षायें दे देकर भी हम आदमी बनकर अभी आगे नहीं बढ़े। जिन आदमियों में अहिंसा वृत्ति नहीं हैं उनका शक्ति प्रयोग करना, मैं समझ सकता हूँ और मेरे पास ऐसे आदमी भी हैं जो अहिंसक रह कर अपनी समस्त शक्ति से दलबन्दी वालों का विरोध कर सकते हैं और जाहिर करते हैं कि ऐसा मुकाबला अहिंसा से हो सकता है।

ऐसी अहिंसा द्वारा शासित विश्व ही अपनी प्रजा को सुख शान्ति का बोध करा सकता है। अहिंसा का शासन बाहरी शासन नहीं है और वह हृदय का आदेश है, कानून की जहां पहुँच नहीं है। रूस ने बर्गहीन समाज की रचना की, अपने देश में उसकी ज्योति का आलोक बिखरा, किन्तु पेट की खाई पाट देने ही से मनुष्य सुखी नहीं हो सकता, यदि उसके पास आत्मा का अमृत

नहीं है। आज भौतिकता की ओर अग्रसर विश्व भी जड़ देह में महावीर की प्राणदायिनी समन्वयात्मकता को प्रतिष्ठित करना होगा। धर्म, ज्ञान, चरित्र, भावना और प्रेम के क्षेत्र में समता और समन्वय लाना है। विश्व का जीवन प्रेम रस मांग रहा है। सत्ता, शक्ति और अन्याय प्राप्तियों पर स्नेह का सुधा सिंचन ही विश्व को अमरत्व दे सकेगा।

भाषण को समाप्त करने के पहिले मैं फिर आपसे कह देना चाहता हूँ कि यदि विश्व अपने वासना, विलास और वैभव के पीछे भटकता दौड़ता रहा तो अवश्य ही उसका भविष्य अन्धकार-मय है।

—— ।

वाणी

भाइयों और बहनों !

मन के बाद है वाणी। मन जो कुछ सोचता है, समझता है, और देखता हैं उसे वाणी के माध्यम द्वारा ही प्रकट करता है। वाणी मन के द्वारा संचालित होती है। अतएव मन शासक है। वाणी शासित है। मन राजा है। और वाणी उसकी प्रजा है।

यदि आप ने मन, काया और वाणी को सम्भाल लिया तो आपका सब सम्भल गया। और इनमें से एक भी बिखरा कि सब कुछ तमाशा बिखर गया। इनमें भी वाणी महत्व पूर्ण है।

मनुष्य जो कुछ भी सुनता है उस पर विचार करता है। वाणी जो सुनी और बोली जाती है, एक यन्त्र मात्र है। मस्तिष्क सुनी हुई बात पर विश्लेषण करता है, जब उसका विश्लेषण स्पष्ट हो जाता है, तो तो मन उसे स्वीकार कर लेता है। उसमें प्रेरणा उत्पन्न होती है। उत्तर में यह वाणी को मौन रहने मा संकेत करता है, अथवा कुछ कहने को प्रेरित

करता है ।

सुना हुआ शब्द मनुष्य सीखता है और आरम्भ में, वैसा ही बोलता है । शिशु को जैसे सम्पर्क में आप रखेंगे वह वैसा ही बनेगा । वैसे ही बोलेगा और वैसे ही टेक अपनायेगा । यदि बच्चे को गहन वन में छोड़ दें तो वह न बोलना सीखेगा, न विचार करना सीखेगा । अधिक से अधिक तो पशु की बोली की नकल कर सकेगा । श्रुत के बिना जीवन बेकार है । वाणी अनुरूप और अनुकरण का प्रतिबिम्ब है और उसका विकाश और शुद्धि संगति पर निर्भर है ।

कहा है—

काग किसका धन हरै, कोयल किसको देय ।
अमृतवाणी बोल के, जग अपना कर लेय ॥

अमृत वाणी का अर्थ आपको इससे प्रतीत होगा कि वह सुनने वालों का मन अपने वश में कर लेती है । उसका विश्वास प्राप्त कर लेती है । कटु बोलने वालों का कहीं सम्मान नहीं होता । वह अपना और दूसरे का दोनों का अपमान, अहित और अकल्याण करता है ।

आज तक जितने साधु-संत, तीर्थंकर हो गये हैं, वे सब वाणी ही दे गये हैं । ज्ञान, विज्ञान और मानव जीवन के विकास की जो संगठित राह हमें प्राप्त होती है, वह सब वाणी की देन है । हमें अपने पूर्वजों एवं पूर्व ज्ञानियों से जो कुछ मिलता है, वाणी रूप में मिला है । जितना मन में है उतना वाणी के द्वारा व्यक्त नहीं हो सकता । मन की भावना को वाणी द्वारा पूर्णतया व्यक्त नहीं कर सकती । क्योंकि वाणी का अन्त है और मन अनन्त है । आत्मा अनन्तान्त है । भाषा वाणी के स्वरों को रूप नहीं दे सकती ।

वाणी से भी कम शक्ति लिखते की है। जो कुछ व्यक्ति कहना चाहता है, वह सब वाणी द्वारा व्यक्त नहीं कर सकता। आप जानते हैं कि यदि आप गुड़ कीं डली खायें और उसका स्वाद बतायें तो, मीठा है, बहुत मीठा है, इतना ही कह सकेंगे, पर आपके मन में जितना आनन्द है, जो भावना आती है उसकी अभिव्यक्ति कैसे करेंगे।

इस प्रकार ग्रंथ भी कभी पूर्ण नहीं हो सकते, वे तो मनुष्य के ज्ञान प्रकाशन के माध्यम मात्र है। मनुष्य को पूर्णता की ओर प्रेरित करते हैं।

मन कामना शुद्ध है तो उसकी वाणी भी शुद्ध होगी। यदि मन अशुद्ध है तो वाणी भी अशुद्ध होगी। मनुष्य के मन की समस्त छायाओं का प्रभाव उसकी भावाना और वाणी पर पड़ेगा और जो कुछ वह कहेगा, उस पर उस मन या भावना की परछाई रहेगी। वाणी से मनुष्य की अच्छाई या बुराई पहचानी जा सकती है। यह जाना जा सकता है कि कि ऊपरी आवरणों के नीचे इसमें क्या छिपा है ? वाणी का प्रभाव अचूक है।

आज आप जानते हैं कि मंत्र क्या है। मंत्र की शक्ति कितनी प्रबल होती है। मंत्र का मतलब किसी जादू से न लेकर उसके प्रभाव से लीजिये। मंत्र का अर्थ वाणी से अधिक और कुछ नहीं। आपका जीवन वाणी पर आश्रित है। यदि आपकी वाणी जीवित है, तो आप जीवित हैं और यदि वाणी मृत है तो आप मृत हैं। यदि वाणी अबल है तो आप अबल हैं। वाणी मन की कमजोरी और सबलता का परिचय दे देती है।

आज और कल के नेता, जितने हुये और हैं, वाणी के द्वारा

बड़े बमें हैं। सिवाय वाणी के उनके पास क्या है ? कर्म और आचरण तो बाद में आते हैं। वाणी का एक शब्द प्रजा, राज्य और देश देशान्तरों में हलचल मचा देता है। युद्ध और संधिया मेल और कलह सच्ची वाणी के द्वारा उत्पन्न होते हैं। शब्द ही आग लगा सकता है और शब्द ही जल के छींटे उस पर डाल सकता है। शब्द बिजली और बर्फ है। शब्द विष और अमृत है। शब्द जिन्दगी और मौत है। इसलिये शब्द को सोच विचार कर काम में लाइये।

पाँडवों और कौरवों के साधारण झगड़े ने महाभारत खड़ा कर दिया, कोटि कोटि वीरों की जानें गईं। देश बरबाद हो गया और शमशान बन गया। केवल द्रौपदी के इतना ही कहने पर कि 'अन्धे के बेटे अन्धे होते हैं', सारा भारत सुलग उठा। एक ओर ग्यारह अक्षौहिणी तथा दूसरी ओर अठारह अक्षौहिणी सेनायें कट मरी।

शशब्द को तोल कर उसका मोल कीजिये। शब्द वाण की तरह है। मुँह के तर्कस से उसको संभाल कर, जान मान कर विचार रूपी शासन की आज्ञा पर निकालिये, वरना एक बार निकले बाण की तरह, एक बार निकला शब्द वापस नहीं आयेगा और आपको आजन्म पछताना पड़ेगा।

भगवान महावीर ने वाणी को तप बतलाया है। जिसका वचन अपने वश में नहीं उसका मन वश में नहीं और जिसका मन चंचल है, रोग ग्रस्त है वह विकास और मोक्ष को कामना तथा साधना कैसे कर सकता है। वाणी विभिन्न स्थानों से आती है। उसके उद्गम और विलय स्थानों में भेद है। वह मन से उठ रही है, आत्मा से उठ रही है, मस्तिष्क से उठ रही है अथवा कोटि लफ्फाजी या वाचालता है, व्यक्ति की अपन

अवस्था पर निर्भर है।

भाइयों ! आप जानते हैं कि इस संसार में मनुष्य और पशु दोनों हैं। अगर मनुष्य ही हो और पशु न हो तो मनुष्य जीवित नहीं रह सकता है। लेकिन पशु विना मनुष्य के जीवित रह सकते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि कौन अधिक उपयोगी है। पशु कभी अप्रिय वचन नहीं बोलता। पर आदमी तो नित्य बोलता है।

वाणी का प्रभाव स्थायी है। यदि एक व्यक्ति के दिल में किसी के बोल चुभ जाते हैं तो पीढ़ियों तक उनका विष नष्ट नहीं होता। इसी प्रकाप मधुर वचन हैं जिनका प्रभाव अमिट होता है। भगवान महावीर को मरे हुए २५०० वर्ष व्यतीत हो गये, पर उतकी अमृत वाणी को पान कर आज भी मानव जीवन धन्य हो रहा है। फर्ज कीजिये महावीर ने अहिंसा की वाणी न बोली होती तो अंधकार न छा जाता? याज्ञिक हिंसावादी जातियां मनुष्य को न जाने कहां ले जाती।

शब्द तारता है और शब्द ही मारता है। आदि कवि वाल्मीमि ने व्याध से यही कहा था, हे निषाद—

रक्खो या मारो—इन छोटे से दो शब्दों में कितनी ताकत है।

श्रुत पर कर्म भावना, आचरण और मोक्ष निर्भर हैं, इस लिये स्वाध्याय का महत्व बतलाया गया। श्रुत न होने पर धर्म कहां टिकेगा? जब धर्म को टिकने की जगह न मिली तो आप कहाँ टिकेंगे?

वाणी का महत्व, उसका उपयोग तथा नियन्त्रण समझ जाइये और तदनुसार अमल कीजिये।

वाणी सम्प्रदाय बनाती है। धर्म और शास्त्रों की रचना करती है। ऊनका विध्वंश और नाश करती हैं। मनुष्य जो कुछ करता है सब वाणी करती है। वाणी कुछ न करे तो मनुष्य कुछ न करें।

इस वाणी के पीछे विश्वास की जोत जलानी चाहिये। इसके आगे सत्य का प्रकाश चाहिये। वरना वाणी अन्धकार में भटकेगी और भटकायेगी, इसलिये वाणी को विवेक की पटरी पर चलना है। अविवेक और अज्ञान की पटरी पर चलकर वाणी असुरों और संहारकों की शक्ति बनती है।

इसलिये यह बोली जाने वाली वाणी या भाषा निर्वध्य हो, मधुर हो, मधूर नहीं मधुरतम हो। भगवान महावीर कैसी मधुरतम भाषा बोलते थे। ऐसी कि जिससे सुनने वाले का मार्ग स्पष्ट और साफ हो। उसमें आत्म विश्वास हो तथा उसकी निराशा नष्ट हो।

वाणी रूपी तलवार गहरी चोट करती है। यह रक्षक और भक्षक है, दुधारी है, इसे देखकर चलाओ। अतः भगवान ने कहा है कि रक्षामय, हितकारी, शुभवचन बोलना भी पुण्य है। पुण्य प्राप्ति का कितना सरल, सहज और तत्काल फल देने वाला मार्ग बतलाया है। मधुरतम वाणी बोलो एवं निर्वध्य बोलो।

जिस प्रकार आप वस्त्र धारण करते हैं, उस प्रकार वाणी भी परिवेष पहनती है। वाणी का वस्त्र माधुर्य है। मन उसका पति है। देवता के सन्मुख अशुद्ध, अपावन एवं अहितकर वचन नहीं बोला जा सकता। जब तक वाणी का तप नहीं है, कोई भी व्रत पूरा नहीं है। व्यक्ति का व्यक्तिपन एवं साधता वाणी से प्रकट होती है, वस्त्रों से नहीं। बाहरी कर्मकाण्ड एवं स्वरूप

से नहीं। वाणी को सम्पूर्ण हृदय की स्वच्छता का सहयोग मिलना चाहिये।

भगवान महावीर की वाणी से गौतम प्रभावित होकर शिष्य बन गये। नेता वाणी से बनते हैं। तलवार लेकर चलने वाला हिंसक विजेता है। वाणी का रस लेकर चलने वाला विजेता अहिंसक विजेता है। एक घात करता है। और मौत उसके आस पास, चारों ओर मण्डराती है। वह जिधर जाता है मौत लेकर जाता है। दूसरा जीवन और अमृत का दाता है। जिधर उसके पांव पड़ते हैं, जीवन कमल खिल उठते हैं। उसकी वाणी सुनकर मुर्दों में प्राण लौट आते हैं। मनुष्य के मन में बैठने की कोई राह नहीं है, लेकिन वाणी वह राह है जो सीधे मनुष्य के मन तक आप को पहुंचा देती है। आप उसका विश्वास पा सकते हैं।

यपि आप दो चीजें भूल जायें और दो चीजें याद रखें तो आपकी मुक्ति निश्चित है। जरा ध्यान से सुनिये। भजन और मृत्यु को स्मरण रखें। प्रभु के चरणों में निरन्तर ध्यान रखें। मौत आने वाली है और हमें संसार से एक न एक दिन, देर-अबेर जाना है, यह न भूले। और भूल जाये कि किसी ने आपके साथ बुराई की है। बुराई करना तो ठीक, अपने प्रति की गई बुराई को सोचने का भी फल बुरा होता है। आपने कोई भलाई की हो तो उसे भी भूल जायें।

वाणी सत्य की साधिका है। मिथ्यात्व उसका साधन नहीं होना चाहिये वरना सिद्धी नहीं मिलेगी। वाणी का विकास आत्म विकास में परिणित होगा, इसलिये वह आवश्यक है। चाहे सत्य हो या रहस्यमय हो, भाषय कटु साध्य न हो। असत्य और अप्रिय लगे—ऐसी वाणी न बोली जाय, जिससे दूसरों का

हित हो ऐसी निर्वद्य भाषा बोलें। वाणी—बोल तो परमाणु है। आप परमाणुओं और प्रदेशों के समूह हैं। अपने भीतर रुग्ण परमाणुओं का प्रवेश मत होने दीजिये, न अपने अन्दर से रुग्ण परमाणु बाहर जगत में फैलाने का पाप भार लीजिये। वाणी पवित्र है तो आपका जीवन पवित्र है। जीवन मन पर आश्रित है और वाणी भी मन पर आश्रित है। मन और उसकी पत्नी वाणी मिलकर मेल या विग्रह कराते हैं। उन पर अंकुश रखिये और सत्य मार्ग ग्रहण कीजिये, तभी आप मन, वचन और कर्म से पवित्र हो सकेंगे। पवित्रता साधन ही मुक्ति के प्रासाद का प्रथम सोपान है।

क्रोध

भाइयों और बहनों !

एक अंग्रेज कवि ने कहा है :—

I was angry with my friend,

I told my wrath, my wrath did end.

I was angry with my foe

I told it not, my wrath did grow.

अर्थात् मैं अपने मित्र से रुष्ट और क्रुद्ध था । मैंने उसे अपना गुस्सा जतला दिया, परिणाम में मेरा क्रोध दूर हो गया । मैं अपने शत्रु पर क्रुद्ध था मैंने उसे अपना क्रोध नहीं जतलाया, मेरा क्रोध बढ़ता रहा ।

क्रोध से सबको हानि होती है । जिस पर किया जाता है उसे, और जो करता है वह हानि उठाता है ।

चार कषाय :—'लोभ, मोह, काम, क्रोध पाप के मूल हैं । अनेक प्रकार के कष्ट इनसे उत्पन्न होते हैं ।

कोही पीई पणासेई ।

क्रोध प्रीति का नाश करता है । क्रोध से हिंसा आदि दुर्गुणों की उत्पत्ति होती है ।

जहां स्वार्थ है, जहां अहं है और जो व्यक्ति तथा राष्ट्र अपने अपने लोभ में डूबे हुये हैं, वहीं क्रोध की उत्पत्ति होती है ।

राष्ट्रों के विषय क्रोध में पलट जाते हैं और ऐसे क्रोध युद्धों को जन्म देते हैं। इस प्रकार क्रोध मानवता के विध्वंस का कारण बन जाता है। स्वार्थ-लिप्सा आज के मनुष्य की सबसे बड़ी बुराई है। इसी के पेट में अनेक प्रकार के प्रपंच खड़े हो रहे हैं। जब तक यह जीती रहेगी आपका खून पीती रहेगी। भाइयों! स्वार्थ को अपने सम्बन्धियों, मित्रों के खून से न पालिये, क्रोध को दूर कीजिये, इसे दूर करने का उपाय सन्तों ने इस प्रकार कहा है :—

उवसमेण हणे कोहं

शांति भाव क्रोध को हटा देता है। इसलिये शांति को धारण कीजिये। शांति की भावना का प्रभाव तत्काल होता है। वह विरोधी को भी विचार करने पर बाध्य कर देती है और वह वश में हो जाता है।

क्लेश, वार्तालाप में वाक्युद्ध, वादविवाद आदि क्रोध को जन्म देते हैं, अतएव उनसे दूर रहना चाहिये।

एक धोबी और एक साधु महाराज में बात बढ़ते बढ़ते बिगड़ गई। दोनों महा क्रोध के वश में हो परस्पर गालियां देने लगे। इतने में एक सज्जन, जो वहां खड़ा तन्मयता पूर्वक सब दृश्य देख रहा था, पंडित से पूछा—महाराज ये क्यों लड़ रहे हैं? ये कौन हैं? पंडित ने उत्तर दिया—इनमें एक साधु और एक धोबी है। परन्तु इस समय यह पहचानना कठिन है कि इनमें कौन साधु और कौन धोबी है। दोनों ही धोबी नजर आ रहे हैं। भला इनमें से एक साधु होता तो लड़ाई कैसे होती?

यह है क्रोध का परिणाम; व्यक्ति स्वरूप पलट देता है। बुद्धि भ्रष्ट कर देता है। क्रुद्ध व्यक्ति न तो अपने को पहचानता

है, न सामने वाले को ही पहचान सकता है। उसकी बुद्धि पर विनाश का पर्दा पड़ जाता है।

क्रुद्ध व्यक्ति प्रतिशोध चाहता है। प्रतिशोध की भावना मनुष्य की पाशविकता की हद है। उस नीचाई पर जाकर उबरना बहुत कम आदमियों को नसीब होता है। अतः क्रोध और बदले की भावना से बचते रहो।

इनके विपरीत है—प्रेम और क्षमा। प्रेम उन सभी घावों को पूर देता है, जो क्रोध के सामने वाले के दिल ने बनाये हैं। प्रेम स्वयं महा औषध है, उसके जलका एक बिन्दु पड़ते आत्मा शांति पाता है। क्षमा उसकी संगिनी है। अपने शत्रु और अहितैषी के प्रति भी निरन्तर क्षमा भाव रखना साधु पुरुषों का काम है।

ईसा की एक ज्ञान वाणी है कि यदि कोई तुम्हारे दायें गाल पर चपत लगाये तो बायां गाल भी उसके आगे कर दो। यह क्षमा और अगम सहनशीलता की भावना; जो क्रोध से ज्वार पर आये मानव के को शांत कर देती है।

आपको भृगु की वह कथा याद होगी जब उसने विष्णु की छाती पर क्रोध पूर्वक लात मारी थी। विष्णु ने अत्यन्त प्रेम व विनम्रतापूर्वक कहा—महाराज आपके पैर में चोट तो नहीं आ गई। मेरी छाती तो वज्र से भी कठोर है, और यह कह कर वे भृगु के पैर दबाने लगे।

यह है सहनशीलता और विवेक भावना। यह मोक्षदायी भावना है। जिनमें यह है, उसके पास सब कुछ है। जिनका मन अपने वश में है, ऐसे मनुष्य इसी भावना के बल निश्चिन्त हो विचरण करते हैं।

न हु मुणी कोवपरा हवन्ति!

आत्मार्थी मुनि कभी क्रोध नहीं करते । जो संयमी हैं, वे कषाय भाव से सदैव दूर रहते हैं ।

क्रोध दो प्रकार का कहा गया है :—आत्मा-प्रतिष्ठित और पर प्रतिष्ठित । जिस व्यक्ति का स्वभाव क्रोधमय हो उसमें उत्पन्न होने वाला क्रोध आत्म-प्रतिष्ठित कहलाता है । ऐसे व्यक्तियों का स्वभाव सांप जैसा कहा जायेगा ।

बाह्य कारणों से जो क्रोध उत्पन्न होता है वह पर प्रतिष्ठित है ।

दोनों प्रकार के क्रोध बुरे हैं । दोनों से आप दूर रहकर अपनी आत्मा और स्वभाव की रक्षा कीजिये ।

क्रोध अच्छा है तो क्रोध पर क्रोध करना । क्रोध को वश में कीजिये । उस पर अप्रसन्न होइये । क्षमा रखना उत्तम है परन्तु अपने क्रोधी स्वभाव के प्रति क्षमा रखना अच्छा नहीं ।

आप महर्षि दुर्वासा के स्वभाव के विषय में जानते होंगे, परम क्रोध स्वभाव था उनका । न जाने क्यों फिर भी वे महर्षि कहलाये । बेचारी शकुन्तला की कितनी दुर्गति की उन्होंने ! अपनी फुलवारी में वह अपने प्रिय दुष्यन्त के ध्यान में मग्न थी कि महर्षि दुर्वासा जा पहुँचे, शकुन्तला उनका स्वागत न कर सकी, मुनि ने शाप दिया—जा तू जिसके ध्यान में मुझे न देख सकी, वह तुझे पहचानेगा नहीं ।

क्रोध बुद्धि का सबसे बड़ा शत्रु है; अतः मानवता, प्रेम और क्षमा का भी शत्रु है ।

क्रोध ने आज तक समस्त युद्धों और अन्यायों की रचना की है । आप संसार के समस्त ग्रंथ देख जाइये । जितने कलह, द्वेष युद्ध, संधि-भंग हुये हैं, सब क्रोध के कारण । पौराणिक पुरुषों के क्रोध की कहानी पुरानी पड़ गई हो तो नये महा-पुरुषों

की क्रोध कथायें पढ़िये, हिटलर का क्रोध तो जग जाहिर है।

एक बार की बात है कि हिटलर एक होटल से निकला, किसी बात पर अन्य व्यक्ति जो वहां उपस्थित थे, हंस पड़े, हिटलर ने समझा कि मुझपर व्यंगपूर्वक हंसे हैं। उसने तोप से उस सारे होटल को उड़ा दिया।

यह है अन्याय और पाशविकता का जनक क्रोध। क्षमा भावना का काम नहीं, व्यक्ति मदान्ध हो देश काल का अस्तित्व भूल जाता है।

क्रोध आदमी के भोजन को विष बना देता है। उसके भोजन को विकृत कर देता है।

घर में क्रोध से जब आग लग जाती है, तो उसे बुझाना मुश्किल हो जाता है। दुनिया में जब क्रोध की आग लग जाती है तो बड़े-बड़े राष्ट्र स्वाहा हो जाते हैं। व्यक्ति के मन की शांति भंग हो जाती है। पारस्परिक सम्बन्धों की मधुरता नष्ट हो जाती है। देशों के व्यावहारिक सम्बन्ध भंग हो जाते हैं।

इस क्रोध ने मनुष्य को मनुष्य नहीं रहने दिया। राक्षस तक की मृत्यु का कारण बना। देवताओं को अपने आसन भ्रष्ट किया और मुनियों का पतन रूप बना।

मनुष्य के साथ उसका स्वभाव और उसके स्वभाव के साथ क्रोध जन्मा। पुराणों में क्रोध की उत्पत्ति का दृस्टान्त है। मनुष्य ने अग्नि को भस्मक समझ कर उसका तिरस्कार किया। अग्नि ने शाप दिया कि मैं तुझे आजीवन जलाती रहूँगी। वह अग्नि अनेक प्रकार से आदमी को भस्म करती है, उसमें से एक प्रकार की अग्नि क्रोध भी है।

मनोवृति की विकृति क्रोध में परिणत होती है। यदि मनोवृति को क्रोधोन्मुख न होने देंगे तो क्रोध से आप बचे रहेंगे।

किन्तु मानव-प्रकृति ऊष्णता को प्रेरित करती है; क्योंकि ऊष्णता से देह टीकी है ।

साधारणतया क्रोध चार भागों में विभक्त है । अनन्तानुबन्ध—जैसे पत्थर पर लकीर खींच दी हो । पत्थर की लकीर कभी मिटती नहीं । ऐसा क्रोध भी जिन घरों में होता है वहां पारस्परिक फूट और द्वेष कभी नहीं मिटता । दूसरा है अपत्या—जैसे दीवार पर खींची लकीर साधारण परिवर्तन पर मिट जाती है । तीसरा—प्रत्याखानी क्रोध—जैसे मिट्टी पर कोई लकीर खींच दे, आँधी आती है और वह लकीर मिट जाती है । चौथा साधारण क्रोध कहा गया है । इसका उदाहरण पानी में खिची लकीर से दिया जा सकता है । लकीर साथ ही बनती और मिट जाती है, ऐसा क्रोध पल भर में उड़ता चला जाता है ।

ऐसा यह क्रोध है क्या ? आज तक जिससे कोई बच न सका !

आपके चारों ओर वायु-मण्डल परमाणुओं से पूर्ण है। अने प्रकार के वक्र, सीधे, कोमल, कठोर, ऊष्ण, शीतल आदि परमाणु भरे पड़े हैं । जैसे जैसे आपके मन की गति एवं वृति होती है वैसे-२ उन परमाणुओं की प्राप्ति आपको होती है । जिस प्रकार रेडियो सेट पर लगी हुई सुई का स्थान परिवर्तन कर देने पर इच्छानुसार वाणी के परमाणु पकड़े जा सकते हैं । और एक ही कमरे में अनेक रेडियो अलग अलग स्थानों के ब्राडकास्ट की तरंगें पकड़ सकते हैं, उसी प्रकार अलग अलग मनुष्य यदि एक ही कमरे में बैठे हों तो वे अपनी अपनी वृति अनुसार तरंगें एवं परमाणु प्राप्त करते हैं, इसलिये आपको अपनी वृतियों पर, भावनाओं पर अंकुश रखना है । आप जैसे

मनोभाव जगायेंगे, वैसे ही परमाणु पायेंगे।

क्रोध की वृति उत्साह की दशा से आरम्भ होती हैं। यदि वह उत्साह विकृत हो जाता है तो क्रोध में पलट जाता है। क्रोध साहस तक ही सीमित रहना चाहिये। उसका उद्दण्ड उफान विनाशकारी है। क्रोध आत्मा को दबा न दे: आत्मा उस पर शासन करे, वह आत्मा पर शासन न करे। यदि ऐसा हो गया तो आत्मा का पतन हो जायेगा। इसलिये क्रोध का विकृत रूप विनाश एवं संस्कृत रूप साहस एवं उत्साह है। यदि उसमें घृणा आ मिले तो वह पापमय संहारक बन जाता है।

लेकिन विनाशात्मक संहार मृत्यु, घृणा और द्वेष तो मनुष्य की किसी समस्या का हल नहीं कर सकते। मृत्यु से मनुष्य के किसी प्रश्न का हल नहीं हो सकता।

इसलिये मृत्यु और विनाश से दूर ले जाकर आप अपने क्रोध को शांत कर दीजिये। शांति के जल से क्रोध की अग्नि शांत हो जाती है। क्रोध को बढ़ाने का मौका देकर उसकी ज्वाला में ईंधन न डालिय। क्रोध को प्रेम से जीत लीजिये। प्रेम ज्यों ज्यों बढ़ता जायेगा- क्रोध कम होता जायेगा। क्रोध को छोटा कर देने से ही आपको उससे मुक्ति मिल सकेगी।

आप पूछेंगे प्रेम और शांति के अतिरिक्त व्यक्तिगत दैनिक क्रोध से छूटने का उपाय क्या है? इसके उत्तर में ईरान के क्रोधी राजा की कथा सुनिये। राजा बड़ा उदार, दयालु, नेक भला था, किन्तु जब उसे क्रोध आ जा जाता था तो पशुओं और पिशाचों से भी बदतर बन जाता था। बड़ी कठिनाई के साथ उसकी रानी ने एक संत से उपाय प्राप्त किया कि जब तेरा पति क्रुद्ध हो तो उसके सन्मुख शीशा धर देना।

रानी ने ऐसा ही किया। राजा को दर्पण में अपना रौद्र रूप देखकर सदबुद्धि उत्पन्न हुई। भाइयों! कोई भी आदमी अपना चेहरा विकृत नहीं देखना चाहता। सुकृत पुण्य कार्यों से ही विकृति नहीं आयेगी। यदि आप बुरे प्रपंचों में फंसे रहेंगे तो आप चाहे कितना छिपायें आपके चेहरे पर विकृति की झलक आये बिना न रहेगी। सरलता और कुटिलता आदमी के दिल से निकल कर चेहरे पर झलकता है। इसलिये सोच-विचार और प्रेम-शांति से क्रोध को अपने वश में कीजिये। जो पाप का मूल है उसे अपने हृदयोद्यान में क्यों बो रहे हो? उस पर कांटे उगेंगे और विष के फल लगेंगे। हृदय को प्रेम की फुलवारी बनाइये और गाइये—

यह मीठा प्रेम पियाला,
कोई पियेगा किस्मत वाला।

कषाय

मानव-जीवन अमूल्य है और यह बार-बार नहीं मिलता है। इस सत्य को मैंने और हमारे सन्तों तथा साधकों ने अनेक अवसर पर जोर देकर दोहराया है। मनुष्य को ऐसा महत्त्वपूर्ण जो देह मिली है, उसे पाकर उसका कर्तव्य और उसका उत्तरदायित्व क्या बढ़ नहीं जाता? यदि यह प्रमाणित होता है कि मानव के कुछ कर्तव्य-कर्म अपने ही प्रति और लोक के प्रति हैं तो हमें यह खोज निकालना शेष रहेगा कि वे कर्तव्य क्या हो सकते हैं।

भगवान ऋषभदेव से लेकर आज तक जैन धर्म और अन्यान्य धर्मों के अवतार तीर्थंकर और मसीहा हुए, उन सबने यह माना कि मनुष्य को अपना उद्धार करना पड़ेगा और मात्र यह देह ही कुछ नहीं है। इससे परे भी एक अमर तत्त्व आत्मा है, जो सब सुखों और शान्ति का धारणकर्ता है, किन्तु उसे माया ने अपने सांसारिक आवरणों में आबद्ध कर लिया है।

इसी माया में भ्रमित मानव अपने कर्तव्य से च्युत होकर अकर्तव्य को कर्तव्य और करणीय को अकरणीय समझ बैठता है। इससे अनेक प्रकार के सामाजिक, धार्मिक एवं देशीय बुराईयां और अहितकर प्रवृत्तियां पैदा होती हैं।

इन बुराइयों में चार प्रमुख हैं :—(१) क्रोध, २ मान, (३) माया, (४) लोभ।

संसार में मनुष्य सामाजिक एवं व्यक्तिगत दोनों रुपों में उन्नति की ओर बढ़ता रहा है। लेकिन उसके कषाय उसे आगे नहीं बढ़ने देते और उसकी शारीरिक, मानसिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति में अनेक प्रकार से बाधक बनते हैं, इस प्रकार कषाय मनुष्य का महा बैरी बनता है।

पिछले सहस्रों वर्षों तक संसार युद्ध के अनबुज दावानल में झुलसता रहा है। अनेक संस्कृतियां बनी और मिटीं और भस्मसात हो गईं, पर युद्ध चलते रहे। नगर शमसान बन गये। मनुष्यता त्राहि-त्राहि पुकार उठी। महाभारत हुआ, लंका युद्ध हुआ, देव दानव संहार हुआ, विश्व युद्ध दो-दो बार हुए, पर फिर भी जातियों और देशों ने लड़ना नहीं छोड़ा, क्योंकि कषाय में पड़े मनुष्य ने अपने कषाय को नहीं छोड़ा। व्यक्ति में क्रोध के रहते राष्ट्र उसकी ज्वाला से किस प्रकार सुरक्षित रह सकता है। अकेली द्रोपदी के क्रोध के कारण इतना बड़ा महाभारत खड़ा हो गया। व्यक्तियों और नेताओं का, राष्ट्रों का पारस्परिक द्वेष और क्रोध मिलकर जब रगड़ खाते हैं तो उसमें से भयकर विस्फोट होकर युद्ध के प्रबलानल सुलग उठते हैं। जिस ओर उसकी लपटें जाती हैं उधर ही भस्म और नाश की काली परछाइयां नाचती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आज की पारिवारिक और आतीय अशान्ति के मूल में क्रोध के विनाशक कीटाणु काम कर रहे हैं।

व्यक्ति के क्रोध के मूल में उसका लोभ, स्वार्थ और आग्रह

है। मैं ही सत्य हूँ—कह कर व्यक्ति-२ अपनी-२ बुद्धि के तराजू पर संसार भर को तौलने और उसका मूल्यांकन करने की धृष्टता करता है और जब इसकी ओर उसका ध्यान खींचा जाता है तब वह गुर्राता है। क्रोध पाप का मूल भी कहा गया है। उसके नशे में आदमी अपने आपको भूल जाता है और अकर्तव्य मान चालू करता है।

यहां मैं आपको एक साधु और धोबी का दृष्टांत याद दिलाता हूँ, जिसमें देव सहायता के मद में एक साधु धोबी से लड़कर पीटा जाता है। अन्त में जब उसका सोया सद्ज्ञान जगता है, तो वह धोबी से क्षमा याचना करता है। इसी समय देव साधु के सम्मुख प्रकट होता है, साधु पूछता है—तू इतनी देर कहां था, जब मेरी पिटाई हो रही थी ? अब आया है सूरमा बनने !

देव बोला—महाराज मैं तो निरन्तर आपकी सेवा में प्रस्तुत था, किन्तु उस लड़ाई में मैं यह नहीं पहचान पाया था कि किसको मदद दूं। साधु और चंण्डाल का भेद समझ में नहीं आ रहा था। दोनों महाक्रोध के वशीभूत मुझे चंण्डाल नजर आ रहे थे।

साधु महाराज. देव की यह बात सुनकर चुप हो गये।

इस प्रकार आप देखते हैं कि कषाय साधु का साधुत्व नहीं रहने देता। मान तो इस क्रोध से भी भयंकर है। राम रावण का युद्ध विनम्रता और उद्दण्डता का युद्ध था। अन्त में अभिमान पराजित हुआ। यह तो राम थे कि मान का मान भंग हुआ, परन्तु दूसरा कोई संसारी होता, तो क्या रावण जैसे का दम्भ दलित होता ?

इसी क्रोध और अभिमान के कारण पारिवारिक एवं पारस-

परिक शान्ति नष्ट होती है। आपसी कलह में एक दूसरे का सम्मान नहीं रहता। आदमी अपनी कसौटी पर दूसरों को कसता है, वह क्रोध करता है। अपनी कसौटी पर अभिमान करता है, बाहुबली के ज्ञान, त्याग और शान्ति का क्या पूछना ! किन्तु एक मान के कारण उन्हें एक वर्ष तक एक पैर पर खड़े होकर तपस्या करनी पड़ी !

मान के बाद मनुष्य के मुंह पर पड़ा दूसरा पर्दा आता है, माया का।

यह पर्दा मान और क्रोध से भी गहरा है। सबसे जटिल और सबसे कुटिल है। विविध रूप बदलकर यह व्यक्तियों को भरमाता है और भांति-भांति के जंजालों में उन्हें फंसाकर उनकी मुक्ति के मार्ग में बाधा बनाता है। माया और मुक्ति में भारी शत्रुता है। माया का भक्त मुक्ति का शत्रु और मुक्ति का सेवक माया का शत्रु है। माया की गति वक्र है और मुक्ति की गति सरल सीधी है। जिसमें माया है, उसमें सब प्रकार के चक्कर हैं और उसमें सब प्रकार की वक्र-विकृतियां हैं।

इस प्रकार काम का क्षेत्र भी व्यक्ति की विनाश भूमि है। काम में अन्धे होने पर विश्वामित्र, इन्द्र, रावण और अनेकानेक हिन्दू पुराण-पुरुषों का पतन हुआ।

आज के सामाजिक जीवन में अब्रह्मचर्य के बढ़ने से आंतरिक शुद्धि नहीं रह गई है। इसलिये लोकोद्धार के लिये सबसे आवश्यक है कि व्यवहार की शुद्धि हो। व्यवहारिक शुद्धि के बिना कर्तव्य-परायणता नहीं आ सकती। व्यक्ति अपने लाभ के लिये दूसरों के अधिकारों का बलिदान कर दे या उनकी ओर से निश्चित हो जाता है तो उसका अपना लाभ भी नष्ट हो जाता

है। पारस्परिक व्यवहार शुद्धि से जीवन चलेगा। हम यह चाहें कि अपनी ओर से तो विकारग्रस्त रहें और सारी दुनियां सद्-व्यवहार में उत्तर दे, नहीं होगा। व्यवहार और शुद्धि मानसिक गुण हैं और अन्य मानसिक गुणों की तरह इनमें भी सक्रामकता है। अपने मन में बुराई आने के साथ उस व्यक्ति के मन में भी आ जायेगी जिसके लिये वह लाई जा रही है अथवा उसके मन पर भी परछाई पड़ जायेगी। इस प्रकार के छल कपटमय जीवन की शुद्धि उन सबके लिये जरूरी है जो सच्चा जीवन बिताना चाहते हैं और उन सबके लिये और ज्यादा जरुरी है जो परमात्मा के पथ पर चलने के प्रयासी हैं। अनेक प्रकार के प्रचलित धर्म-कर्मों में मन, आत्मा और शरीर की मुक्ति मान बैठना त्रुटिमय है। क्योंकि आत्मा की शान्ति का नाम ही पौषध और व्रत है। आत्मा का महाव्रत है शान्ति लाभ करना। केवल शारीरिक उपवास करने और भूखों मरने से मुक्ति नहीं मिलती, क्योंकि यदि यही सच्चा पथ होता तो आज तक आधे से अधिक भारत मुक्ति पा जाता। और मुक्ति'लोक में भारतीयों की भारी भीड़ लग जाती! सचमुच संसार का हित चाहना, प्राणी मात्र के लिये सुकामना करना; धर्म है। मुक्ति और व्यवहार धर्म का चोगा पहनकर भी माया आती है। लम्बे काले कम्बल का चोला पहनकर और धर्म का चिमटा हाथ में लेकर माया आती है और चिलम और गांजा के दम लगाती है। माया भगवा कपड़ों और पादरी के लम्बे लबादे में छिपकर आती है। वह सकुचित और धर्मान्धता की जय बोलती है और स्वर्ग के परवाने काटती है। माया वायुमण्डल में व्याप्त है और वायु मायामय बन गयी है।

इन सब विकृत विपत्तियों के बीच कषाय और काम, क्रोध मान, माया, और स्वार्थ के पंक में से मुक्ति का कमल खिलता है।

अपनी अन्तवृत्ति को शुद्ध कर, अशुभ से शुभ की ओर शुभ से शुद्ध की ओर बढ़कर ही मनुष्य उस मुक्ति को पा सकता है।

विश्व में अहिंसा एवं तकनीकी विज्ञान चरम सीमा पर पहुँच गया है। अब इसके आगे विनाश के सिवा कुछ नहीं है। ऐसे समय में विश्व में अहिंसा, अप्रिय ग्रह एवं अध्यात्मिक विकास के विचारों को विश्व में फैलाने का

मुनि सुशील कुमार जी का योगदान

मानव जाति के कल्याण के लिए संजीवनी

का काम करेगा।

इस महान कार्य के लिए

महाराज श्री जी के चरणों में

हम सब सदस्यों का सविनय

वंदना एवं हार्दिक मंगल-कामनायें

स्वीकार कीजिये।

मन्त्री :	प्रधान :
रोशन लाल जैन	वकील चन्द जैन
७५१६४	७७०१२

मित्र मिलन

जैन नगर, मेरठ शहर।

फिर वैसा युग आयेगा…उस युग की रूढ़ियों का विरोध
हुआ भगवान महावीर द्वारा। अतः समाज ने कुछ
सुख की सांस ली। आज के युग में पुनः नव-नव
रूपों में हिंसा बढ़ रही है, पुनः एक महावीर का
अनुयायी कृत संकल्प है वैसा ही सुखद
वातावरण लाने को…कर्मरत हैं धर्म के
मूल्यवान खजाने को देश-विदेश में
निःस्वार्थ वितरित करने में !

विदेश से आपकी वापसी पर हम आपका

हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

अम्बर	**नगीन चन्द जैन**
बिन्नी टैक्सटाईल्स शोरूम	ए
१२९, बुढ़ाना गेट (निकट निगार)	व
मेरठ-२ फोन : ७५१३५	म्
७५१६४	परिवार गण

जैनसन्स	**जैनसन्स**
मुफतलाल व लाल भाई	**ड्रेस मैटीरियल शोरूम**
ग्रुप शोरूम	७४, चौक सदर बाजार
११७/२, बुढ़ाना गेट, मेरठ-२	मेरठ-२ फोन : ७२७५४
(निकट बिन्नी शोरूम)	७५१६४

विश्व वन्दनीय मुनि

श्री सुशील कुमार जी महाराज

जिन्होंने

अपनी विदेश-यात्रा में

असंख्य युवकों को

अहिंसा और सद् आचरण

की दीक्षा दी

हमारा कोटि-कोटि नमन !

प्रधान । सत्यपाल जैन

मंत्री । कैप्टन धनराज जैन

यंग फ्रेन्डस एसोशियेसन

जैन नगर, मेरठ ।

महाराज श्री सुशील कुमार जी

के

स्वदेश आगमन पर

हार्दिक अभिनन्दन !

मेहताब चन्द जैन

मैट्रो पोलिटिन काउन्सलर

२००, किनारी बाजार, नौघरा

दिल्ली–६

कष्ट उठा, जग का हित करते,
सन्त, सुजन, सरिता औ चन्दन।
जग उपकारी, मुनि सुशील के,
चरणों में श्रद्धायुत वन्दन॥

मुनि श्री सुशील कुमार जी के

विदेश-यात्रा से वापस

स्वदेश पधारने पर

हार्दिक वन्दन के साथ अभिनन्दन!

कमल हैण्डलूम क्लाथ डीलर

सुभाष बाज़ार, मेरठ।

फोन। ७४८८१

७४६२६ निवास

मुनि श्री सुशील कुमार जी

की

मंगलमय विदेश यात्रा

से

वापस लौटने पर

हरियाणा जैन समाज

की ओर से

हार्दिक अभिनन्दन !

जिनेन्द्र कुमार जैन

कुरुक्षेत्र विश्व विद्यालय

कुरुक्षेत्र

मुनि श्री सुशील कुमार जी

की

मंगलमय विदेश-यात्रा

से

वापस लौटने पर

शुभ कामनायें !

तेज प्रकाश कौशिक

अहिंसा भवन,

शंकर रोड, नई दिल्ली

सोने की परीक्षा अग्नि में होती है !

किन्तु,

सन्त की परीक्षा

निन्दा-प्रशंसा के क्षणों में होती है !

मुनि श्री सुशील कुमार जी

ने निन्दा एवं प्रशंसा का समान भाव से

स्वागत कर

सहस्त्र-सहस्त्र जनों की

श्रद्धा प्राप्त की है !

परम संत को हार्दिक वन्दन !

मन्त्री :	प्रधान :
युगल किशोर जैन	प्रीतम चन्द जैन

स्वाध्याय सभा

जैन नगर, मेरठ ।

जैन जगत के ज्योतिर्धर हे,
विश्वधर्म के हे नव प्राण ।
तुमने ऊंचा किया निरन्तर,
भारत भूमि का अभिमान ।।

मुनि सुशील कुमार जी महाराज

के

४२ सप्ताह की विश्व-यात्रा पश्चात स्वदेश आगमन

पर

हार्दिक मंगल कामनाओं

के साथ

चिरंजीशाह राजकुमार

तीर्थंकर महावीर मार्ग, मेरठ।

तार : महावीर

फोन : ७५५८०-७३१२६ आफिस
७३८४७-७५६२७ फैक्ट्री
७२३१० निवास

मुनि श्री सुशील कुमार जी

को

अ. भा. चौरासिया ब्राह्मण महासभा

की ओर से

स्वदेश वापसी पर

शुभ कामनायें !

बिहारी लाल शर्मा

बी० ए०

जनरल सेक्रेटरी

बाजार सीताराम, दिल्ली

परम सन्त

मुनि श्रेष्ठ श्री सुशील कुमार जी

को

सफल विदेश यात्रा

के बाद

उनके स्वदेश आगमन पर

क अभिनन्दन !

ऑल इण्डिया दिगम्बर भगवान महावीर २५०० वां निर्वाण महोत्सव सोसायटी (मेरठ सम्भाग)

मंत्री मेरठ सम्भाग
प्रेम प्रकाश जैन

अखिल भारतीय प्रधान मंत्री
सुकुमार चन्द जैन

मानव मात्र के प्रति जिनके हृदय में

असीम प्रेम एवं सद्भाव हैं

उन

मुनि श्री सुशील कुमार जी

के

सफल विदेश-यात्रा के पश्चात स्वदेश आगमन

पर

शत्-शत् वन्दन !

(ला० नन्दूशाह वकील चन्द जैन)

ओसवाल क्लाथ स्टोर

गुदड़ी बाजार, मेरठ शहर ।

फोन : ७५२२०
७७०१२ निवास

महाराज श्री मुनि सुशील कुमार जी

के

विदेश भ्रमण की वापसी पर

शत् शत् नमन !

प्राणी मित्र

आनन्द राज सुराणा

नई दिल्ली

अपनी विदेश-यात्रा में

हर नारी को

मातृत्व की सही दिशा की दीक्षा

अहिंसा का सन्देश

और

नारी गरिमा को उन्नत करने की राह

दिखाने वाले

परम भारतीय संत

विश्व वन्दनीय मुनि

श्री सुशील कुमार जी

का

हार्दिक अभिनन्दन !

मंत्री : श्रीमती विद्यावन्ती जैन

प्रधान : लीलावन्ती जैन

महिला मैत्री संघ

जैन नगर, मेरठ

भारतीय संस्कृति के प्रबल प्रचारक

अहिंसा और सत्य के संदेशवाहक

मुनि श्री सुशील कुमार जी

आधुनिक विवेकानन्द बनें

यही हमारी हार्दिक शुभ कामना है !

शंकर देव

संसद सदस्य

१६, नार्थ एवेन्यु, नई दिल्ली

रचियता :—

- एक विश्व एक सरकार
- उल्टी खोपड़ी
- क्या ईश्वर है ?
- इन्द्रा गांधी समग्र रूप में
- सदा निराहारिणी
- माणिक्या योगिनी
- मौलिक आधार याद रख लिये मौलिक कर्त्तव्य भूल गये

महाराज श्री सुशील कुमार जी

के

स्वदेश आगमन पर

हार्दिक अभिनन्दन !

कैलाश चन्द जैन

२२, कोटला मार्ग

नई दिल्ली

(विनय नगर)

पुस्तक प्रणेता

मुनिवरः सुभाग जी

सपादकः जय प्रकाश शर्मा

अध्यक्षः नरेश चंद जैन

कमला पॉकेट बुक्स

मेरठ-२.